दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९६ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २६ अंक नं० १

आराधक को दुःख नहीं है

हे जीव! अनादि संसार में परिभ्रमण करते हुए तू ..... दुःखों के आरपार निकला है, किंतु विराधकभाव से, ज्ञातापने के विरोधभाव से।

एक बार यदि सम्यक् आराधनासहित सब दुःखों से भेदज्ञान करके पार हो जा तो फिर इस संसार का कोई दुःख तुझे न हो।

जो आराधक जीव अपनी सम्यक् आराधना में भंग नहीं पड़ने देता, उसके लिये जगत में कोई प्रतिकूल है ही नहीं। अपने आराधकभाव में जिसे शिथिलता है, वही अन्य अनेक उलझनें पैदा करता है। हे जीव! तू अपनी आराधना में तत्पर रह... तुझे कोई विघ्न है ही नहीं।

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

जून : १९७० वार्षिक मूल्य ३) रुपये (३०१) एक अंक २५ पैसा [वैशाख : २४९६

आत्मधर्म के ग्राहकों को

आवश्यक सूचना

(१) आत्मधर्म का नया वर्ष इस वैशाख महीने के अंक से प्रारम्भ हो रहा है।

(२) जिन ग्राहकों का चन्दा अब तब नहीं आया है, उनसे निवेदन है कि अपना आगामी वर्ष (संवत् २०२६-२७) का चन्दा ३/ तीन रुपये मनीआर्डर द्वारा भिजवा देवें, ताकि नये वर्ष के अंक यथासमय आपको मिलता रहें।

(३) जिन नगरों में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल हैं, उनसे निवेदन है कि अपने नगर के ग्राहकों का चन्दा एकसाथ लिस्ट बनाकर मनीआर्डर अथवा ड्राफ्ट द्वारा भिजवा देवें।

(४) संस्था की ओर से वी.पी. नहीं की जाती। आपकी ओर से सूचना मिलने पर ही आत्मधर्म वी. पी. द्वारा भेजा जायेगा।

(५) चन्दा भेजते समय अपना ग्राहक नंबर एवं पूरा नाम और पता जिला-तहसील सहित स्पष्ट अक्षरों में अवश्य लिखें। पता स्पष्ट न होने से आत्मधर्म मिलने में विलंब होता है।

चन्दा निम्न पते पर भेजें:—

मैनेजर

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) (गुजरात राज्य)

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्र० गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

जून : १९७० ☆ वैशाख, वीर नि०सं० २४९६, वर्ष २६ वाँ ☆ अंक : १

सुवर्णपुरी (सोनगढ़) में अप्रतिहत मंगल

तारीख ९-५-७० को श्री जिनेन्द्र भगवंतों की मंगल प्रतिष्ठा और जिनमार्ग की प्रभावना करके पूज्य स्वामीजी सोनगढ़ पधारे। भक्तों ने ऊर्मिभरा स्वागत किया। करीब दो हजार संख्या में मेहमान एकत्रित हुए थे। सर्वप्रथम स्वामीजी ने जिनमंदिर में भगवान सीमंधर आदि के भावभीने चित्त से दर्शन किये, अर्घ्य चढ़ाया, पश्चात् श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मंडप में सभा के बीच मांगलिक सुनाया।

'नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते'—ऐसा कहकर श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव ने शुद्ध आत्मा को नमस्काररूप महान अप्रतिहत मंगल किया है। शुद्धात्मा जो चैतन्यभाव है, उसे मेरा नमस्कार है; वह हितरूप है, सुखरूप है, अपनी अनुभूति के द्वारा ही प्रकाशमान है। शुद्धात्मा की अनुभूति, वह संवर-निर्जरातत्त्व है, वह चैतन्य की अंतर्मुखी अरागी परिणति है, मोक्षमार्ग है। चैतन्यस्वभाव की अस्ति दिखाकर मंगल किया, उसमें विरुद्धभाव की (मिथ्यात्व-रागादि की) नास्ति आ गई।

स्वानुभूति से प्रकाशमान शुद्ध आत्मा, स्व-पर के समस्त भावों को जानता है; ऐसा कहकर सर्वज्ञता-पूर्णदशारूप मोक्षतत्त्व प्रसिद्ध किया, इसप्रकार शुद्ध जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष—यह चारों अस्तिरूप कहे, उसमें अजीव तथा आस्रव-बंध की नास्ति है—ऐसे समयसार को नमस्कार करके मंगल किया, और निर्विघ्नतया अप्रतिहत भाव से २७८ कलश सहित संस्कृत टीका पूर्ण हो गई; वह महामंगल है। समयसार में अलौकिक भाव भरे हैं। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने भी 'वंदित्तु सव्वसिद्धे' कहकर अपूर्व भाव से समयसार का प्रारंभ किया और निर्विघ्नतया ४१५ गाथा द्वारा रचना पूर्ण हो गई। यह महान अप्रतिहत मंगल है।

मांगलिक में आचार्य ने शुद्धात्मा को नमस्कार किया; समयसार अर्थात् शुद्धात्मा भावरूप है, सत्तारूप है; इसप्रकार भावरूप वस्तु, चित्स्वभाव उसका गुण, स्वानुभूति उसकी पर्याय—इसप्रकार शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायरूप समयसार को नमस्कार हो।

समयसार-शुद्धात्मा को नमन करता हूँ, उसमें अंतर्मुख होता हूँ, उसमें ढलता हूँ—ऐसा जो भाव, वही अपूर्व मंगल है। अप्रतिहत भाव द्वारा अंतरंग स्वरूप में ढला, अब मेरी परिणति अन्य किसी भाव में नमन करनेवाली नहीं है।

अनंतज्ञान-आनंदस्वभाव से परिपूर्ण आत्मा अपनी स्वानुभवरूप निर्दोष वीतरागी पर्याय के द्वारा प्रसिद्ध होता है, और उस निर्मल पर्याय (परिणति) में रागादि अशुद्धता का अभाव है। इसप्रकार अंतर के आनंदसहित स्वरूप को प्रकाशित करके अपूर्व मंगल किया है।

❁ ❁ ❁ ❁

पूज्य श्री कानजीस्वामी की ८१वीं जन्मजयंती (सत्यार्थ जयंती) के अवसर पर

परमोपकारी परम पूज्य गुरुदेव! आपका कोटि-कोटि उपकार मानकर सभी धर्म-जिज्ञासुजन आपकी ८१वीं जन्मजयंती के पुनीत अवसर पर अतिविनय सहित अभिनंदन करते हैं। सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का और परम प्रयोजनभूत हेय-उपादेय परिणति का अपूर्व परिज्ञान देकर आपने मुमुक्षु समाज को निहाल कर दिया है। उपरांत समस्त विश्व को परमहित का स्वरूप बतलाने में सावधानी पूर्वक दो नयों के विभाग द्वारा जिनवाणी माता की भक्ति और एकत्व-विभक्त आत्मा को दर्शा रहे हैं; आपसे बढ़कर हमारे लिये अन्य हितकारी कौन है ? अध्यात्म-ज्ञान के द्वारा आप भारत का नवसर्जन कर रहे हैं, सर्वज्ञ वीतराग कथित सत्यार्थस्वरूप की पहचान, स्वाश्रयरूप सम्यग्ज्ञान और तद्रूप आत्मानुभूति द्वारा हम आपकी जयंती मनायें वही सत्यार्थ जयंती एवं हमारे जीवन की सार्थकता है।

भावनगर (वैशाख शुक्ला २)

मलकापुर (महाराष्ट्र) में चार दिन

(फाल्गुन शुक्ला ९ से १२ तक : समयसार गाथा ७३)

मंगल विहार करते हुए पूज्य स्वामीजी मलकापुर पधारे; बड़ी भक्ति सहित भावभीना स्वागत हुआ; दो जिनमंदिरों में दर्शन किये; बड़े मंदिरजी में महावीर प्रभु की बहुत बड़ी प्रतिमाजी हैं। २१ वर्ष पूर्व (संवत् २००५ में) वींछिया शहर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के समय श्री कानजीस्वामी के हाथ से विधि सहित प्रतिष्ठा हुई थी। यहाँ की तीन विदुषी बाल-ब्रह्मचारिणी बहिनें सोनगढ़ ब्र. आश्रम में रहती हैं। यहाँ पर समयसारजी गाथा ७३ पर प्रवचन हुए थे। प्रथम मंगलाचरण में स्वामीजी ने कहा कि— धर्मी को निज परमात्मपद परम प्रिय है, जिससे आत्मा में उसकी स्थापना करके मंगल किया जाता है। परमात्मपद का जिसे प्रेम जागृत हुआ, उसे राग का प्रेम नहीं रहता। अतः राग का प्रेम छोड़कर परम चैतन्य पद का प्रेम (रुचि-श्रद्धा-अनुभव) करना महान मंगल है।

देह से भिन्न भगवान आत्मा चेतनस्वरूप है, वह सर्व रागादि से भिन्न स्वभाववाला है। राग अपने को जानता नहीं किंतु चैतन्यरूप ज्ञान स्वयं स्व को तथा अपने से भिन्न रागादि को जानता है; इसप्रकार राग में स्व-पर-प्रकाशपना नहीं है, इसलिए वह अचेतन है। ज्ञान में ही स्व-पर प्रकाशकपना है, इससे वही आत्मा का स्वरूप है।

इसप्रकार ज्ञान और राग की भिन्नता की प्रतीति द्वारा जो भेदज्ञान करता है, वह जीव अपने अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करता है; राग में भगवानपना-महिमावंतपना नहीं है, स्व-परप्रकाशक ऐसे ज्ञान में ही भगवानपना है, वही सदा महिमावंत है, इसलिये आचार्यदेव ने आत्मा को 'भगवान' कहा है। ऐसे भगवान आत्मा की जो पहिचान करता है, उसे ही आत्मा में अतीन्द्रिय आनंदामृत बरसता-झरता है। अहो, भेदज्ञान का स्वरूप बतलाकर वीतरागी संतों ने पंचम काल में अमृत की वर्षा की है।

आत्मा का स्वरूप समझने की जिसे जिज्ञासा है, दुःख से और दुःख के कारणरूप परभावों से छूटने के लिये जो लालायित है और तत्त्व-महिमा एवं विनय से जो प्रश्न करता है, ऐसे शिष्य को आचार्यदेव आत्मा का स्वरूप समझाते हैं। 'काम एक आत्मार्थ का अन्य नहीं मन रोग'—ऐसे जिज्ञासावान जीव को इस समयसार द्वारा शुद्धात्मा बतलाते हैं।

अहो, जिनको तीर्थंकर भगवान का साक्षात् दर्शन हुआ था, ऐसे श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने निजवैभव से इस अलौकिक शास्त्र की रचना करके जगत के ऊपर महान उपकार किया है।

धर्मी जानता है कि मैं चैतन्यमय आत्मा हूँ। कैसा हूँ मैं? कि स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष हूँ। स्वसंवेदन द्वारा मैंने अपने आत्मा को प्रत्यक्ष किया है। परोक्ष रह जाऊँ या राग के द्वारा, इन्द्रियों के द्वारा ज्ञात होऊँ, ऐसा मैं नहीं हूँ, किंतु इनसे तो मैं भिन्न हूँ;—ऐसे आत्मा को स्वसंवेदन में ग्रहण करे-अनुभव में ले, तब सच्चे आत्मा को जाना है। यह चैतन्यस्वरूप आत्मा ज्ञानावरणीय आदि द्रव्यकर्म, रागादि भावकर्म तथा शरीरादि नोकर्म सहित नहीं है, फिर भी संयोग में एकताबुद्धिवश अज्ञानी जीव उसे कर्मफलसहित मानते हैं, अज्ञानी का यह प्रतिभास ही भव का बीज है। पुरुषार्थसिद्धिउपाय गाथा १४ में श्री अमृतचंद्राचार्य ने कहा है कि अज्ञानी स्व-पर के आत्मा को परभावों सहित ही देखता है, वही मिथ्या प्रतिभास संसारभ्रमण का मूल है, और भेदज्ञान द्वारा सर्व परभावों से भिन्न चैतन्यरूप आत्मा का स्वसंवेदन द्वारा अनुभव करना, वह मोक्ष का मूल है।

इसलिये जो दुःख से छूटना चाहते हैं, मोक्षसुख का अनुभव लेना चाहते हैं, वे अपने ज्ञान के संवेदन द्वारा ऐसे आत्मा को जानकर उसी का अनुभव करो। यही सम्यग्दर्शन प्रगट करने का और दुःख से मुक्त होने का उपाय है।

(यहाँ रात्रिचर्चा विशेष सुंदर चलती थी। युवकगण शास्त्रों के अभ्यासपूर्वक प्रश्न करते थे। सैकड़ों जिज्ञासु परम प्रेम से श्रवण करते थे। आज के युवक जैन तत्त्वज्ञान में ऐसी रुचिसहित रस ले रहे हैं—यह देखकर स्वामीजी ने भी प्रसन्नता प्रगट की थी।)

शिष्य का प्रश्न आत्मा की गहराई में से उत्पन्न हुआ है, पुण्य-पाप दोनों से पार अपना सत्यार्थ स्वरूप क्या है, वह लक्ष में लेना चाहता है। अपना परम तत्त्व परमानंद के वैभव से भरा हुआ है, उसे भूलकर शरीर और रागयुक्त आत्मा को मानना, वह तो कलंक है।

आत्मा तो सदा ज्ञानस्वरूपी है, उसे मनुष्यपना, देवपना, तिर्यंचपना, रागीपना, पुण्य-

पाप आदि से पहिचानना, वह आत्मा की सच्ची पहिचान नहीं है। आत्मा तो देह और राग से पार ऐसे स्वसंवेदनस्वरूप है। अपना आत्मा ही चैतन्य परमेश्वर है। छोटे-छोटे बच्चों में बचपन से ही ऐसे धार्मिक संस्कार डालना योग्य है कि—तू शुद्ध है, आनंद है, तू चैतन्य है... ऐसे आत्मा की पहिचान करना, वही धर्म की सच्ची विधि है।

अहा, चैतन्यतत्त्व शुभराग से और पुण्य से भी पार है। यहाँ बाह्य संयोग की या शरीर की तो क्या बात! शिष्य पूछता है कि—प्रभो! रागादि आस्रवों से मेरा आत्मा कैसे छूटे? आस्रवों से छूटने की विधि क्या है? अर्थात् आस्रव-पुण्य-पाप, वह छोड़ने योग्य हैं, दुःखदाता हैं—ऐसा तो माना है और उनसे छूटकर सुखी होना चाहता है। ऐसी पकड़ नहीं करता कि पुण्य से मुझे धर्म का लाभ होगा, किंतु उससे पार आत्मा का संवेदन करना चाहता है। उसे आचार्यदेव उसकी सच्ची रीति बतलाते हैं।

आत्मतत्त्व का परमार्थ स्वरूप क्या है—उसका सच्चा निर्णय करना, वही आस्रवों से छूटने का उपाय है। आस्रवों से भिन्न तत्त्व का सत्य निर्णय किये बिना उनसे छूटने का प्रयत्न जागृत नहीं होता। भिन्नत्व की प्रतीति द्वारा आत्मा में एकाग्र होते ही आस्रवों की पकड़ छूट जाती है।

[फाल्गुन सु. ११ के सवेरे बड़े मंदिरजी में श्री कुन्दकुन्दाचार्य गुरु के शिष्य कानजीस्वामी के हाथ से परम भक्तिपूर्वक श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के पवित्र चरण कमलों की स्थापना हुई थी। सैकड़ों भक्त मुनिराज की भावभीनी स्तुति कर रहे थे। प्रवचन में गुरुदेव ७३वीं गाथा द्वारा स्वसंवेदनप्रत्यक्ष अखंड आत्मा का स्वरूप समझा रहे थे।]

मैं स्वसंवेदनप्रत्यक्ष हूँ और द्रव्य-पर्याय के भेदरहित एक अखंड हूँ, ऐसा अनुभव करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव जगत में सच्चे सुखी हैं, चैतन्यऋद्धि के स्वामी ऐसे चैतन्य-बादशाह हैं, जगत की बाह्यऋद्धि से वे उदास हैं। अंतर की लक्ष्मी में लक्ष को बाँधकर लक्षपति हुए हैं, इसलिए बाहर का अन्य कुछ वे चाहते नहीं। ऐसे धर्मात्मा जीव स्व-अर्थ में अर्थात् अपने आत्मा को साधने में ही तत्पर हैं। अतः ज्ञानी के अंतरंग में परमेश्वर सदा विराजमान हैं।

धर्मी जानते हैं कि मेरा आत्मा निर्मम है, ममता रहित है; क्योंकि अपने चिदानंद स्वभाव से अन्य किसी भी परभाव के स्वामित्वरूप से मैं परिणमित नहीं होता, मैं तो पूर्णज्ञान-दर्शनरूप से ही अपने आत्मा को अनुभव में लेता हूँ।

आत्मानुभव में जो रागरहित परम पुरुषार्थ और आनंद है, उसे अज्ञानी पहिचानते नहीं। आत्मा कर्ता, आत्मा की पर्याय उसका कर्म-आदि छह कारक के भेद के जो विकल्प, वे आत्मा के स्वरूप में नहीं हैं। धर्मी जीव किसी भी विकल्प (राग) के स्वामीरूप से परिणत नहीं होता। आज श्री कुन्दकुन्दाचार्य प्रभु के चरणों की यहाँ जिनमंदिर में स्थापना की है, वह तो भक्ति का एक भाव है।

कुन्दकुन्द प्रभु ने समयसार में राग से पार जो शुद्ध चैतन्यतत्त्व बतलाया है, उसका स्वयं अनुभव किया है। उसे पहिचानकर अपने में सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान प्रगट करना, वही कुन्दकुन्द प्रभु के चरणों की परमार्थ स्थापना है। कुन्दकुन्द प्रभु के आत्मा ने जो किया, वैसा भाव अपने में प्रगट करना, वही सच्ची स्थापना है। कुन्दकुन्द प्रभु तो वीतरागभावरूप परिणमित आत्मा थे, उनकी सच्ची स्थापना (सच्ची पहिचान) वीतरागभाव में ही होती है; राग से भिन्न जो वीतरागी ज्ञान, उसके द्वारा ही आत्म-स्वभाव की और पंचपरमेष्ठी की पहिचान होती है; और सच्ची पहिचान सहित स्थापना, वही सत्यार्थ स्थापना है।

राग द्वारा धर्म होगा—ऐसा कुन्दकुन्द भगवान ने कभी नहीं कहा; फिर भी जो राग के द्वारा धर्म होना मानते हैं, वे कुन्दकुन्द भगवान को पहिचानते नहीं, उनने आचार्य भगवान को अपने अन्तरंग में स्थापित किया ही नहीं; उन्होंने तो राग को ही अपनी रुचि में स्थापित किया है। राग को कभी भी आत्मा नहीं कहा, राग तो आस्रवतत्त्व है। जो बंध का ही कारण है। सच्चे आत्मा को यदि अनुभव में लेना है तो राग की प्रीति छोड़, राग का स्वामित्व छोड़, जगत से भिन्न हूँ, पारमार्थिक चैतन्य वस्तु हूँ—इसप्रकार धर्मी अपना अनुभव करता है।

अनुभव के लिये प्रथम वीतराग कथित तत्त्व का सच्चा निर्णय करना चाहिये। आत्मा का यथार्थ स्वरूप ज्ञान में लेने पर उसका पक्का अनुभव होता है, यही रीति है। जहाँ ज्ञान ही भूलसहित हो, वहाँ सच्चा अनुभव ही नहीं होता। सच्चा ज्ञान और सच्चा निर्णय होते ही सारा अभिप्राय बदल जाता है, जीव की दिशा ही बदल जाती है। प्रथम अज्ञानी रहकर शरीर से, रागादि से अपना जीवन मान रहा था, जहाँ सर्वज्ञ वीतराग कथित आत्मा की पहिचानसहित भान हुआ कि मैं तो चैतन्यमय हूँ, मेरा जीवन राग से या शरीर से नहीं है किन्तु चैतन्य द्वारा ही मेरा अनादि-अनंत जीवन है। ऐसी प्रतीति होते ही चैतन्यभावरूप से ही अपने को देखता-अनुभव करता है, रागादिभावरूप से अपना अनुभव नहीं करता—ऐसी दशा हो, तब वह जीव धर्मी हुआ माना जायेगा।

आत्मा स्वयं अपने को देखे-जाने, अनुभव करे, ऐसे स्वभाववाला है। आत्मा ऐसा अंध-जड़ नहीं है जो स्वयं अपने को न जाने। आत्मा ऐसी वस्तु है कि जिसे जानते ही अतीन्द्रिय आनंद का वेदन (अनुभव) होता है। जड़ पदार्थों में ज्ञान-आनंद नहीं है, उसीप्रकार उन जड़ पदार्थों के लक्ष से जो ज्ञान रुक गया है, वह ज्ञान सच्चा ज्ञान नहीं है, न उसमें आनंद भी है। अपना शुद्ध ज्ञानस्वभाव नित्य है, उसी के लक्ष से आनंद है; और वह स्वयं आनंदस्वरूप है। उसमें गुण-गुणी आदि भेद करने से आनंद का अनुभव नहीं होता, किंतु राग की—विकल्पों की उत्पत्ति होती है। ज्ञान की शक्ति महान है जो समस्त विश्व का माप कर लेता है; राग में या विकल्प में ऐसी शक्ति नहीं है। विकल्प को अपने में प्रवेश कराये बिना ही ज्ञान उसे जान लेता है—ऐसी ज्ञान की शक्ति है।

ऐसे ज्ञानस्वभाववाला आत्मा स्वयं ज्ञायक है, आनंदस्वरूप है; बाह्य विषयों के बिना आत्मा स्वयं स्वभाव से ही आनंदस्वरूप है। जिसप्रकार कोई मनुष्य शांति से बैठा हो; स्पर्श, रस, रूप, गंध, शब्दादि किन्हीं विषयों को न भोगता हो; उससे कोई पूछे कि—कहिये, कैसे हैं? तब वह कहता है-मजे में हूँ;—अर्थात् बाह्य विषयों के बिना अकेले आत्मा में आनंद का अस्तित्व होना, वह मानता है। ज्ञानानंदस्वरूप निजात्मा को भूलकर जिसने रागादि विकल्पों को ही अपना स्वरूप मानकर अज्ञान से उनकी पकड़ की है, उस जीव को आस्रव और दुःख है। किंतु जब भान हुआ कि मैं तो चैतन्यसमुद्र हूँ, रागादि विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है, ऐसी प्रतीति होते ही आत्मा ने आस्रव की पकड़ छोड़ दी, इसलिये वह आस्रव रहित हुआ। —इसप्रकार भेदज्ञान का अभ्यास करना चाहिये।

[मलकापुर में चारों दिन जैन समाज ने उत्साह से भाग लिया। श्वेताम्बर जैन बंधुओं ने भी निःसंकोच स्वामीजी के प्रवचनादि का लाभ लिया था। रात्रि को शंका-समाधान में बड़ी संख्या में तत्त्वज्ञान संबंधी प्रश्न पूछे जाते थे। चर्चा में किशोर और युवकगण विशेष लाभ लेते थे। छोटे बच्चों को सम्यग्दर्शन, मोक्ष, निश्चय-व्यवहार आदि की चर्चा करते हुए देखकर सबको बड़ा हर्ष होता था। मलकापुर मुमुक्षुमंडल बड़ा उत्साही है; पूज्य स्वामीजी के उपदेश द्वारा प्रभावित होकर यहाँ के भाईयों ने कुदेव-पूजादि कुरीतियाँ छोड़कर सर्वज्ञ-वीतराग कथित जैनधर्म को समझकर सत्यमार्ग अपनाया है।] ●●

खंडवा शहर में चार दिन

मलकापुर में चार दिन रहकर फाल्गुन सुदी १३ को पूज्य स्वामीजी खंडवा शहर पधारे जहाँ उनका उल्लासपूर्वक भव्य स्वागत हुआ। खंडवा के भव्य प्राचीन जिनालय में अनेक प्राचीन जिनबिंब विराजमान हैं; मनोज्ञ जिनबिंबों के दर्शन करते हुए आनंद होता है।

विशाल सभामंडप में स्वागत-गीत के पश्चात् तीन हजार करीब श्रोताओं की उपस्थिति में मंगल-प्रवचन करते हुए स्वामीजी ने कहा—

आत्मा का, चैतन्यस्वभाव ही सार है, विश्व-तत्त्वों में निज शुद्धात्मा ही सार है—उपादेय है, वही मंगलरूप है; उसमें अंतर्मुख होने से ही हित होता है, आनंद होता है। जड़ वस्तु में किंचित् ज्ञान नहीं है, सुख नहीं है। आत्मा का जो सहज स्वभाव है, उसे जानने पर सच्चा ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख होता है क्योंकि वह स्वयं ज्ञान और सुखस्वरूप है। आत्मा का ऐसा स्वभाव वह सार है; समयसार शास्त्र के प्रारंभ में उसे नमस्कार किया है। नमस्कार करना अर्थात् उसमें अंतर्मुख होना; अंतर्मुख होने पर जो सम्यग्ज्ञान-आनंदरूप दशा प्रगट होती है, वह मंगल है।

खंडवा शहर की जैन जनता बहुत उत्साही एवं वात्सल्यवंत है। यहाँ की चार विदुषी बहिनें सोनगढ़ में ब्रह्मचर्य आश्रम में रहती हैं। सिद्धवरकूट तीर्थक्षेत्र भी यहाँ से ४० मीटर दूर है। यहाँ समयसार कर्ताकर्म अधिकार की गाथा ६९-७० पर प्रवचन तथा रात्रि को शंका-समाधानरूप तत्त्वचर्चा भी होती थी। सम्यक्त्व चारित्र के यथार्थस्वरूप पर प्रकाश डाला जाता था।

जड़-चेतन की भिन्नता तथा राग और ज्ञान की भिन्नता समझाते हुए स्वामीजी ने कहा कि आत्मा स्वयं चेतनस्वरूप वस्तु है, वह अपने चैतन्यस्वरूप को भूलकर रागादिक परभावों का कर्ता होता है, वह अज्ञान है, वह संसार है। अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि जड़ की-शरीर की क्रिया अपनी है, किंतु जड़ की क्रियारूप आत्मा तीन काल में नहीं होता।

चैतन्यमय स्ववस्तु की अपेक्षा से रागादि-पुण्य-पाप, वह परवस्तु है, चैतन्य के साथ उसे एकता नहीं है। ऐसा भेदज्ञान करे, तब जीव चेतनभावरूप ही अपना अनुभव करता हुआ

रागादि परभावों को किंचित् भी अपने में नहीं करता, इसलिये उसे बंधन भी नहीं होता। इसप्रकार भेदज्ञान मोक्ष का उपाय है।

आत्मा और ज्ञान को एकत्व है, भिन्नत्व नहीं है; इसलिये ज्ञान वह मैं हूँ—इसप्रकार अनुभव करता हुआ जीव ज्ञानक्रिया को करता है, जाननेरूप परिणमन करता है।—वह तो बराबर है; जीव का ऐसा स्वरूप ही है; किंतु ज्ञान के समान क्रोधादिक में भी यह क्रोध मैं हूँ, वह क्रोधादि मेरा कार्य है—इसप्रकार अज्ञानभाव से जीव वर्त रहा है; वास्तव में क्रोधादि, वह ज्ञान का कार्य नहीं है किंतु अज्ञानी अपने ज्ञानस्वरूप को भूलकर क्रोधादिरूप अपने को मानता है-अनुभव करता है। अज्ञान, वही संसार का मूल है।

अनंत बार शुभभाव करने पर भी अज्ञान के कारण जीव संसार में ही भ्रमण करता रहा, अपना सिद्ध परमात्मा समान चेतनरूप है, उसे जाना ही नहीं और शरीर तथा राग की क्रिया को अपना स्वरूप मानकर मिथ्यादृष्टि ही रहा। पंच महाव्रतादि के शुभभाव करने पर भी आत्मानुभव बिना लेश भी सुख नहीं पाया, दु:ख ही पाया—अर्थात् महाव्रत का शुभराग सुख का कारण नहीं है, मोक्ष का कारण नहीं है।

१४८ कर्म प्रकृति में से कोई भी प्रकृति, जिस भाव से बँधती है, वह भाव राग होने से आत्मा को सुख का कारण नहीं है क्योंकि जिस भाव से बंधन होता है, उस भाव को तो 'अपराध' कहा है, भगवान ने जिसको अपराध कहा है, उस शुभराग को अज्ञानी मोक्ष का सच्चा कारण (साधन) मानते हैं। रागादि भावों की क्रिया आत्मा की स्वाभाविक क्रिया नहीं है; वास्तव में आत्मा की धर्मक्रिया नहीं है; मोक्ष के कारणरूप क्रिया नहीं है। राग से भिन्न ऐसी जो ज्ञान-क्रिया, वही आत्मा की वास्तविक क्रिया है, वही धर्मक्रिया है, वही मोक्ष के कारणरूप क्रिया है।

चर्चा में एक प्रश्न हुआ कि—सम्यग्दृष्टि को जो राग होता है, उसका उसे दु:ख है या नहीं?

जो राग है, वह दु:ख है, धर्मी उसे दु:खरूप जानता है; किंतु विशेषता इतनी है कि धर्मी की जो ज्ञानपरिणति है, उसमें दु:ख तो उस ज्ञानपरिणति का परज्ञेय है। सुख का अनुभव तो ज्ञान के साथ तन्मय है और दु:ख का वेदन ज्ञान से भिन्न है।

प्रश्न:—स्वाध्याय का रंग कैसे लगे?

उत्तरः—जिसप्रकार जिसे क्षुधा लगी हो, उसे खाने की उत्कंठा होती है; उसीप्रकार जिसे आत्मा की भूख जागृत हो, उसे आत्मा के हितार्थ वीतरागी शास्त्रों की स्वाध्याय का रंग लगता है।

प्रश्नः—सम्यग्दर्शन हुआ, उसकी खबर कैसे पड़ती है ?

उत्तरः—सम्यग्दर्शन के साथ ही अपूर्व निर्विकल्प आनंद का अनुभव होता है; अपने को अतीन्द्रिय आत्मिक आनंद का अनुभव हुआ, वहाँ प्रतीति हो जाती है कि—यह आनंद आत्मा का है; आत्मा अनुभव में आया, आत्मा श्रद्धा में-ज्ञान में आया, उसकी अपने को निःशंक प्रतीति हो जाती है, आत्मा अंधा नहीं है जो स्वानुभव की खबर ही न पड़े।

प्रश्नः—सम्यग्दृष्टि को अपने सम्यक्त्व में शंका पड़ती है ?

उत्तरः—नहीं; मैं सम्यग्दृष्टि हूँ या नहीं—ऐसी जिसे शंका हो, वह सम्यग्दृष्टि होता ही नहीं।

प्रश्नः—सम्यग्दृष्टि जीव मरकर विदेहक्षेत्र में जन्म धारण कर सकता है ?

उत्तरः—हाँ, स्वर्ग के सम्यग्दृष्टि देव मरकर विदेहक्षेत्र में भी जन्म लेते हैं। सम्यग्दृष्टि मनुष्य मरकर विदेहक्षेत्र में जन्म नहीं लेते; तथा विदेहक्षेत्र के सम्यग्दृष्टि जीव मरकर भरतक्षेत्र में जन्म नहीं लेते।

प्रश्नः—सम्यग्दृष्टि जीव देह सहित विदेहक्षेत्र में जा सकते हैं ?

उत्तरः—हाँ, कुन्दकुन्द मुनिराज विदेहक्षेत्र में गये थे।

प्रश्नः—विदेह में कैसे पहुँच जाये ?

उत्तरः—(१) देह से भिन्न ऐसे आत्मा की प्रतीति करने पर 'विदेह' ऐसे अतीन्द्रिय आत्मधाम में जाया जाता है। आत्मा स्वयं देह से रहित होने से 'विदेह' है, और अंतर के स्वानुभव द्वारा उसमें जा सकते हैं। बाह्य में विदेहक्षेत्र में जाने का क्या प्रयोजन है ? बाह्य क्षेत्र से विदेहक्षेत्र में जाये तो उससे आत्मा को कुछ लाभ हो जाये, ऐसा नहीं है; अंतर में देहरहित ऐसा जो विदेही चैतन्यस्वरूप उसमें दृष्टि करे तो आत्मा को लाभ होता है।

[फाल्गुन सुदी १५ को जिनमंदिर की एक वेदी पर १००८ श्री बाहुबली भगवान की प्रतिष्ठा पूज्य श्री कानजीस्वामी के सुहस्त से हुई थी। खंडवा से सिद्धवरकूट, बड़वानीजी तथा पावागिर-ऊन सिद्धक्षेत्र समीप होने से संघ के कई लोग वहाँ जाकर वंदना कर आये थे। पूज्य

बहिनश्री-बहिन सिद्धवरकूट की यात्रा करने गई थी, वहाँ जिनेन्द्र बिम्बों की भक्तिसहित वंदना की और चारों अनुयोगमय जिनवाणी की मंगल स्थापना भी विधिपूर्वक की। खंडवा में भारी आनंदोत्सव का वातावरण था। भोपाल से श्री मिश्रीलालजी गंगवाल, इंदौर से सेठ देवकुमारजी जैन आदि तथा आसपास के गाँवों से अनेक साधर्मीगण पधारे थे। गुरुदेव की अमृतवाणी भेदज्ञान का मार्ग बतलाकर सम्यक्त्व की प्रेरणा देती थी।

आत्मा में सर्वज्ञस्वभाव भरा हुआ है; उस स्वभाव के सन्मुख होने से जो ज्ञानक्रिया होती है, उसमें आत्मा की एकता है, वह आत्मा का स्वरूप है और मोक्ष का कारण है, अत: उसका निषेध नहीं है। किंतु ज्ञान से विरुद्ध ऐसी जो क्रोधादि परभावों की क्रिया, वह आत्मा का स्वरूप नहीं है, वह बंध का कारण है, इससे मोक्ष के मार्ग में उस क्रिया का निषेध है।

पुण्यवंत हाथी के मस्तक में मुक्ताफल (गजमोती) होते हैं। युद्ध में जब बड़े-बड़े हाथी मरते हैं, तब मस्तक फटने के कारण माँस के साथ अंदर से मोती भी बिखर जाते हैं। वहाँ कौए तो मोतियों को छोड़कर माँस खाते है, और मानसरोवर के हंस मोती ही चुगते हैं। उसीप्रकार चैतन्यप्रभु आत्मा आनंद से भरपूर समुद्र है, उसमें अनंत पवित्र गुणरूपी रत्न हैं, शरीर तो माँस का पिण्ड है, क्रोधादि परभाव मलिन भाव हैं; वहाँ सम्यग्दृष्टि हंस तो विवेकरूपी भेदविज्ञान के द्वारा चैतन्यगुणरूपी रत्नों को अंगीकार करता है; किंतु मिथ्यादृष्टि कौए के समान अविवेक से क्रोधादि परभावोंरूप ही अपने को अनुभव में लेता है और जड़ शरीर की क्रियाओं को अपनी मानता है। आचार्यदेव उसे भेदज्ञान कराकर जड़ से—परभावों से भिन्न अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप समझाते हैं। ऐसे स्वरूप को दृष्टि में लेते ही राग रहित ऐसे अतीन्द्रिय आनंद का वेदन होता है।

आत्मा का स्वभाव तो ज्ञानभवनरूप है, ज्ञातारूप होकर स्व-पर को जाने, ऐसी ज्ञान-प्रवृत्ति वह तो आत्मा का स्वरूप है; किंतु अपने ऐसे स्वभावरूप न होकर रागादि परभावों के साथ एकताबुद्धिरूप अज्ञान के कारण जीव क्रोधादि परभावों में वर्तते हैं, वही दु:ख और संसार का कारण है।

वह कब छूटे? यह बात आचार्यदेव ने इस समयसार में समझाई है। आत्मा क्या? उसका स्वभाव क्या? और उससे विरुद्ध ऐसे रागादि परभाव क्या? उसकी पहिचान और भिन्नत्व का विवेक करके परभावों से भिन्न वर्तना-वह मोक्ष का उपाय है।

[जैनों के उपरांत अजैन जिज्ञासुगण भी प्रवचनों का लाभ लेने आते थे। म.प्र. के भूतपूर्व मुख्य प्रधान श्री भगवंतराव मंडलोई भी गुरुदेव के दर्शन तथा प्रवचन का लाभ लेने आये थे। यहाँ दिगम्बर जैनों के ७०० घर हैं और वातावरण धार्मिक एवं वात्सल्ययुक्त है।]

खंडवा का चार दिवसीय कार्यक्रम समाप्त होते ही चैत्र कृष्णा १ के दिन सायंकाल गुरुदेव ने रतलाम की ओर प्रस्थान किया। बीच में रात्रि को सिमरोल ग्राम में विश्राम करके चैत्र वदी दोज के प्रात:काल रतलाम की ओर चले। बीच में बदनावर (वर्धमान) गाँव आया। यहाँ करीब २०० जिज्ञासुगण रास्ते में स्वामीजी के दर्शनार्थ खड़े थे। यहाँ श्वेताम्बर समाज के १२५ घर हैं, दिगम्बर समाज के चार घर हैं। प्राचीन जिनालय हैं। समस्त जैन समाज ने उत्साह सहित स्वामीजी का स्वागत किया और पाँच मिनट के मांगलिक में आत्मानंद की बात सुनाते हुए गुरुदेव ने कहा कि—भगवान अरहंत और सिद्ध परमात्मा को पूर्ण आनंद प्रगट हुआ है और प्रत्येक आत्मा में ऐसा अतीन्द्रिय आनंद है। आत्मा के ऐसे अतीन्द्रिय आनंदस्वभाव की प्रतीति करके उसे प्रगट करने की भावना करना और रागादि की भावना छोड़ना, वह मंगल है।—इसप्रकार मांगलिक सुनाकर पूज्य स्वामीजी रतलाम पधारे।

इंदौर में जैनधर्म शिक्षण शिविर

इंदौर में २४ मई से १३ जून तक २१ दिवसीय दिगम्बर जैनधर्म शिक्षण शिविर चालू है। इस वर्ष नागरिकों में शिविर में भाग लेने हेतु अपूर्व उत्साह है। २४ मई को प्रात: ठीक ७ बजे कपड़ा मार्केट (कन्या विद्यालय प्रागंण) में सुप्रसिद्ध विद्वान पंडित हुकमचन्दजी शास्त्री (जयपुर) की अध्यक्षता में जैन समाज के प्रमुख नेता सेठ राजकुमारसिंहजी कासलीवाल द्वारा शिविर का उद्घाटन हुआ। प्रात: ७ बजे से रात्रि १० बजे तक शिविर का कार्यक्रम प्रतिदिन करीब ७ घंटे चल रहा है।

प्रवचनकर्ता—(१) श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री (जयपुर) २४ मई से २८ मई
(२) श्री नेमीचंदजी पाटनी (आगरा) २९ से ३१ मई
(३) श्री पंडित बाबूभाई (फतेपुर) १ जून से ८ जून
(५) श्री पंडित खेमचंदभाई (सोनगढ़) ९ जून से १३ जून तक

—रतनलाल गंगवाल

आत्मकल्याण करने का उपाय

माघ शुक्ला १०-११-१२ के दिन पूज्य स्वामीजी जैतपुर शहर में पधारे; जैतपुर के जिनालय में श्रेयांसनाथ भगवान विराजमान हैं। ग्यारहवें श्रेयांसनाथ तीर्थंकर की प्रतिष्ठा को ग्यारस के दिन दसवाँ वर्ष बैठा; इसी दिन पूज्य स्वामीजी ने आत्मा का श्रेय (कल्याण) साधने का अपूर्व उपाय बतलाया। समयसार गाथा ११ द्वारा प्रवचन में कहते हैं कि अंधकार को जाननेवाला स्वयं अंधा नहीं है; अंधकार का ज्ञान भी चैतन्यप्रकाश की सत्ता में ही होता है, राग और ज्ञान के भेदविज्ञान द्वारा ऐसे चैतन्यप्रकाशरूप अपने स्वयं को देखना, वह सम्यग्दर्शन है, तथा वह आत्मा का श्रेय है।

आत्मा को सम्यग्दर्शन किसप्रकार हो अर्थात् आनंद किसप्रकार प्राप्त हो? इसको बतलाने के लिये यह अमृत मंत्र हैं। समयसार की प्रत्येक गाथा भगवान आत्मा के अमृतस्वरूप को बतलाती है। इसमें ग्यारहवीं गाथा तो जैन सिद्धांत का प्राण है। इसमें कहते हैं कि आत्मा का भूतार्थ स्वरूप-सच्चा स्वरूप, इसको लक्ष में लेकर अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है। इसके अतिरिक्त पुण्य के विचार में रुके, या भेद के विचार में रुके, उसको सच्चा आत्मा अनुभव में आ सकता नहीं अर्थात् सम्यग्दर्शन हो सकता नहीं।

शरीर तो जड़ है, जड़रूप ही सदाकाल रहा है, आत्मा का बनकर कभी रहा नहीं है; वर्तमान में भी आत्मा से भिन्न ही है।

आत्मा की दशा में दिखलाई देनेवाले राग-द्वेषादि भाव हैं, वे भी आत्मा के ज्ञानस्वरूप को जानते नहीं, वे कभी ज्ञानरूप हुए नहीं हैं। रागादिभाव तथा ज्ञान दोनों ही भिन्न पदार्थ हैं। रागवाले आत्मा का अनुभव करते समय आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अनुभव नहीं होता; इससे पार ज्ञानस्वरूप को अनुभव में लेने से सम्यग्दर्शन होता है।

परसन्मुख झुकी हुई ज्ञानपर्याय, उस ज्ञानपर्याय जितना ही आत्मा मानने में आवे तो

उसको भी अखंड आत्मा का ज्ञान नहीं है। अंतर में अखंड आत्मा का आश्रय करके अभेदरूप उसका अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है।

सम्यग्दर्शन के द्वारा चैतन्य-चमत्कार आत्मा को जो प्राप्त कर लेता है, वह निहाल हो जाता है; वही श्रेष्ठ है, वही धर्मी है। जिसको चैतन्य का भान नहीं, उसके पास पुण्य के कारण लाखों-करोड़ों रुपये का ढ़ेर हो तो भी ज्ञानी कहते हैं कि वह हीन है, पर के पास से सुख लेना चाहता है, वह अज्ञान से पागल है। रुपयों से कहीं सुखी नहीं बना जा सकता, वह तो जड़ हैं, उनमें सुख कैसा ? धनवानपना, यह कहीं गुण नहीं, तथा दरिद्रता यह कहीं दोष नहीं है। आत्मा के अनंत गुणों का खजाना जिसने प्राप्त किया, वही सच्चा धनवान है, स्वयं के अनंत गुणों का खजाना भूलकर जो दूसरे के पास से सुख माँगता है, वह दीन है-भिखारी है।

अहा, अपने चैतन्यस्वरूप की बात प्रसन्नचित्त से जो जीव श्रवण करता है, अर्थात् राग की रुचि से पीछे हटकर चैतन्य की रुचि करता है, वह अल्प काल में अवश्य ही मुक्ति को प्राप्त करता है। जीव ने पर का प्रेम किया है, राग का प्रेम किया है किंतु राग से पार चैतन्यस्वरूप स्वयं कौन है, उसको लक्ष में लेकर उसका प्रेम कभी नहीं किया। चैतन्यस्वरूप अखंड अनंत गुणों का निधान है—उसका प्रेम करके, उसका लक्ष करके, श्रद्धा का अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है; यह मोक्ष का उपाय है !

जीव किसको कहना ? परमार्थ से जीव का स्वरूप कैसा है ? जीव ने अनादि से अपना जो शुद्धस्वरूप है, उसका कभी अनुभव नहीं किया, पहिचाना नहीं, किंतु ऊपरी संयोगवाला, अशुद्धतावाला ही अपना अनुभव किया है, इतना ही अपना अस्तित्व माना है, वह तो कीचड़ से युक्त मैला पानी पीनेवाले के समान है, किंतु जिसप्रकार औषधि के द्वारा स्वच्छ करके विवेकी पुरुष स्वच्छ पानी पीते हैं, उसीप्रकार विवेकी धर्मी जीव निर्मल भेदज्ञान के द्वारा अपने आत्मा को संयोग से तथा मलिन भावों से भिन्न शुद्धस्वरूप अनुभव करते हैं। ऐसा अनुभव वह धर्म है। एक सेकंड भी ऐसा धर्म करे तो जन्म-मरण का अन्त आ जाये। ऐसे अनुभव के बिना अन्य किसी भी उपाय से जन्म-मरण का अन्त आनेवाला नहीं है !

अरे, राग की ओट में पूर्ण चैतन्यभगवान को अज्ञानी देखता नहीं है, राग के पीछे उसी समय राग से रहित संपूर्ण चैतन्यसमुद्र आनंद से भरा हुआ विद्यमान है, उस आनंदधाम आत्मा को नहीं देखते हुए, राग के कर्तापने को ही अपना अस्तित्व देखते हैं। राग से भिन्न जो अपना

अस्तित्व नहीं देखता, वह जीव भेदज्ञान से रहित है अर्थात् विवेकी नहीं है। वह तो राग का ही अनुभव करता है। भूतार्थरूप ऐसे शुद्ध आत्मा का अनुभव नहीं करता।

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं कि जैसी हमारे आत्मा की सत्ता है, वैसी ही प्रत्येक आत्मा की शुद्ध सत्ता है। प्रत्येक आत्मा ज्ञान-आनंदमय अपनी-अपनी सत्ता से परिपूर्ण है; अपने स्वरूप से प्रत्येक आत्मा का भिन्न-भिन्न अस्तित्व है, वह कहीं अन्य के कारण से नहीं है। आचार्यदेव कहते हैं कि अहो! अंदर राग से भिन्न अनंतगुना संपूर्ण आत्मा है, उसको तुम देखो। अंदर अंधकार नहीं है; अंधकार को भी वह जाननेवाला है। अंधकार को जाननेवाला स्वयं अंधा नहीं है; अंदर चैतन्यप्रकाश है, उसकी सत्ता में अंधकार का ज्ञान है। ऐसे चैतन्यप्रकाशरूप अपने को देखना, यह सम्यग्दर्शन है, यही आत्मा का कल्याण है। 'मैं अंधकार हूँ'—ऐसा नहीं किंतु 'यह अंधकार है, मैं इसको जानता हूँ' इसप्रकार अंधकार से भिन्न रहकर आत्मा को जानता है, किंतु स्वयं उसमें सम्मिलित नहीं हो जाता। इसीप्रकार राग-द्वेष-क्रोधादि जितने भी शुभ-अशुभभाव हैं, यह सभी भाव चैतन्यप्रकाश से भिन्न हैं। ऐसे चैतन्यस्वरूप आत्मा के अनुभव से ही सम्यग्दर्शन होता है, इसके अनुभव से ही सम्यग्ज्ञान होता है, इसके अनुभव से ही सम्यक्चारित्र होता है। ऐसा मोक्षमार्ग है तथा यही धर्म है।

शरीर-धन इत्यादि परवस्तु है, इनका आत्मा में अभाव है, इन वस्तुओं के अभावरूप आत्मा का अस्तित्व है, वह अपनी चैतन्यसत्ता से ही टिका हुआ है। इसीप्रकार रागादि परभाव, इनके अभावरूप शुद्धचैतन्य का अस्तित्व अपने से ही है। राग के बिना कहीं आत्मा मर नहीं जायेगा, शुद्ध चैतन्यसत्ता से ही उसका जीवन सदा टिका हुआ है। ऐसे आत्मा में अंतर्मुख होकर राग से भिन्नरूप उसका अनुभव करना, यह सम्यग्दर्शन है। यही आत्मा का कल्याण है। श्रेयांसनाथ भगवान ने आत्मा के श्रेय के लिये ऐसे मार्ग का उपदेश दिया है।

अरे जीव! थोड़ा सा भी दुःख तुझे असह्य लगता है, तब फिर अनंत तीव्र दुःखों के कारणरूप मिथ्यात्व का सेवन तू क्यों कर रहा है। यदि घोर संसार दुःखों से छूटना चाहता है तो मिथ्यात्व का सेवन छोड़, और वीतराग सर्वज्ञदेव का अपने आत्मस्वरूप की पहिचान कर... जिससे परम मोक्ष सुख की तुझे प्राप्ति होगी।

आचार्यदेव शुद्धात्मा दिखलाते हैं

शिष्य को एक ही लगन है कि अपने शुद्धात्मा को पहिचानना है

आत्मा का शुद्ध स्वरूप कैसा है कि जिसको पहिचानने से आत्मा का कल्याण हो? जिसका स्वरूप नहीं जानने से मैं संसार में दुःखी हुआ, जिसको जानने से परम आनंद प्रगट हो, ऐसा शुद्धात्मा का स्वरूप कैसा है?—इसप्रकार शुद्धात्मा को जानने की लगन से शिष्य पूछता है कि उसको आचार्यदेव शुद्धात्मा का स्वरूप बतलाते हैं। स्वर्ग कैसे प्राप्त हो, पुण्य का बंध कैसे हो अथवा धन कैसे प्राप्त हो—ऐसी बात शिष्य नहीं पूछता, उसके अंतर में इनके प्रति प्रेम नहीं है, उसके अंतर में तो एक ही लगन है कि मेरे शुद्धात्मा को मुझे पहिचानना है। इसलिये उसकी ही बात पूछता है। ऐसे शिष्य को शुद्धात्मा का स्वरूप समझाने के लिये समयसार की रचना करने में आयी है।

वीतराग परमात्मा की वाणी जिनको साक्षात् श्रवण करने को मिली थी, अंतर में आत्मा के आनंद की ज्योति जिनको प्रगट हुई थी, चैतन्य के वीतरागस्वरूप में जो झूलते थे, ऐसे संत महंत की यह वाणी है। वह इस समयसार में एकत्व-विभक्त शुद्ध आत्मा का स्वरूप अपने आत्मा के निजवैभव से समझाते हैं, अर्थात् अंतर के स्वानुभवपूर्वक यह वाणी है। उनके द्वारा बतलाये हुए शुद्धात्मा का तुम स्वयं स्वानुभव करके शुद्धात्मा का अनुभव करना।

इस छठी गाथा में आत्मा के अपूर्व अलौकिक भाव भरे हुए हैं। चैतन्यरत्न क्या वस्तु है, यह बतलाया है। किंतु रत्न की झलक तो जौहरी पहिचान सकता है, किसान को उसकी परीक्षा नहीं हो सकती। चैतन्य-प्रकाश से झलकता हुआ आत्मा सर्वज्ञता तथा आनंद के समुद्र से भरा हुआ है। उसके अंदर की रिद्धि, उसका निजवैभव कोई अचिंत्य है। ऐसे स्वभाववाला ज्ञायक आत्मा स्वयंसिद्ध अनादि-अनंत सत्‌रूप है, वर्तमान में भी ऐसा ही प्रकाशमान है। ज्ञायकस्वभावी आत्मा अनादि-अनंत ऐसा का ऐसा ही एकरूप है, यह शुभ अथवा अशुभ कषायों के चक्ररूप नहीं बना है। स्वसंवेदन से ऐसा आत्मा अनुभव में आता है और अनादि-अनंत आत्मा का ज्ञान एक क्षण में हो जाता है। अर्थात् अंतर्मुख होते ही एक समय में अनादि-अनंत आत्मा स्वानुभव में जानने में आता है। ऐसे ज्ञायकस्वरूप आत्मा को दृष्टि में लेने से, अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है। ऐसे आत्मा को स्वानुभव से हे शिष्य! तू पहिचान!

इसको पहिचानने से जन्म-मरण छूट जायेगा और परम आनंद प्राप्त होगा, क्योंकि ज्ञायकत्त्व जन्म-मरण से रहित है, आनंद से भरा हुआ है, इसलिए इसके अनुभव से जन्म-मरण दूर होकर आनंद प्रगट होता है।

शुद्ध-अशुद्धभाव, वह आत्मा की अशुद्धदशा है, पर्याय में यह अशुद्धता है; किंतु एक ज्ञायकभावरूप आत्मा को लक्ष में लेकर उसके शुद्ध स्वभाव को देखने से वह शुभ-अशुभरूप नहीं हुआ, ज्ञायकभावरूप ही रहा हुआ है। ऐसा ज्ञायकस्वरूप अपना ही है, वह स्वयं के द्वारा समझा जा सकता है, इसप्रकार समझने में आने योग्य होने के कारण संतों ने इसको समझाया है। इसको समझने के लिये अन्य दूसरे भावों से प्रेम का त्याग होना आवश्यक है। पूर्व के असत्य के हठाग्रह को त्याग कर पात्र होकर सत्समागम का प्रयत्न करे तो अवश्य समझने में आवे ऐसा है तथा समझते ही आनंद आता है, ऐसी यह चैतन्यवस्तु है।

अनादिकाल से अपने सच्चे स्वरूप को भूलकर पुण्य-पाप के साथ एकरूप ही आत्मा का अनुभव किया है, किंतु अंतर में एकरूप ज्ञायकभाव के समीप जाकर उसमें एकाग्र होकर अनुभव करे तो भगवान आत्मा पुण्य-पाप से भिन्न अनुभव में आता है, इसी को शुद्धात्मा कहा जाता है। इसप्रकार पुण्य-पाप से भिन्न शुद्ध आत्मा की उपासना करना, अनुभव करना, यही मोक्ष का कारण है। यही दु:ख से छूटने का उपाय है।

भगवान आत्मा तो आनंद को उत्पन्न करनेवाला है, वह कहीं पुण्य-पापरूप कषायचक्र को उत्पन्न करनेवाला नहीं है। वर्तमान अवस्था की अपेक्षा से देखा जाये तो पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले शुभाशुभभाव के अनुसार आत्मा ने परिणमन किया है, किंतु द्रव्य के स्वभाव से देखो तो भगवान आत्मा तो एक ज्ञायकभाव ही है, वह शुभ या अशुभरूप कभी बनता ही नहीं।—ऐसे आत्मा को लक्ष में लेना, यह सम्यग्दर्शन है।

शुभ-अशुभभावों में चैतन्य का प्रकाश नहीं, चैतन्य में से इनकी उत्पत्ति नहीं हुई है, एवं शुभाशुभभावों का आश्रय करने से चैतन्य की उत्पत्ति होती नहीं है। शुभाशुभभाव, यह पुण्य-पापरूप संसार को उत्पन्न करनेवाले हैं, इनके द्वारा आत्मा का प्रकाश वृद्धि को प्राप्त नहीं होता; इसलिये चैतन्यभाव से शुभ-अशुभराग भिन्न ही है। राग से भिन्न चेतनवस्तु है, वह चेतनपने का त्याग करके रागरूप हो सकती नहीं।—ऐसी वस्तु को द्रव्यस्वभाव से शुद्ध देखना, यह सम्यग्दर्शन है, इसमें आनंद का वेदन है।

आत्मा स्पष्ट-प्रकाशमान ज्योति है, अर्थात् स्वयं अपने ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष वेदन में आता है। ऐसा प्रत्यक्ष स्वसंवेदन करे, तब सम्यग्दर्शन होता है।●●

राग तेरा स्वरूप नहीं

स्वामीजी जामनगर पधारे, तब चेला ग्राम में भी पधारे थे। चेला वह जीवराजजी महाराज की जन्मभूमि है। वहाँ की ग्राम्य जनता के समक्ष गुरुदेव द्वारा किया गया सरल प्रवचन यहाँ दिया जा रहा है। (माह शुक्ल ६ : समयसार कलश १८३) प्रवचन के बाद गाँव के ९० वर्ष के प्रमुख वृद्ध श्री लखमशी दादा ने अपना प्रमादे हर्षभाव व्यक्त करते हुए कहा कि आपके प्रताप से हमारा चेला तो आज बम्बई शहर जैसा बन गया; आत्मा की ऐसी बात ९० वर्ष में आज सर्वप्रथम श्रवण करने को प्राप्त हुई।

णमो अरिहंताणं—अर्थात् आत्मा में जो अज्ञान-राग-द्वेषरूपी शत्रु थे, उनको नाश करके जो सर्वज्ञ वीतराग हुए, वह अरिहंत भगवान हैं। वर्तमान में विदेहक्षेत्र में ऐसे अरिहंत परमात्मा सीमंधर भगवान इत्यादि विराजमान हैं। इस देह से भिन्न आत्मा है, उसमें आनंद है; उसका भान करके सर्वज्ञ होनेवाले अरिहंत परमात्मा हैं।

जीव को अपनी खबर नहीं; अपने को भूलकर चार गति के अनंतभव जीव ने किये हैं। स्वर्ग में-नरक में, पशु में या मनुष्य में, इसप्रकार चारों गति में जीव ने अनंत अवतार धारण किये। श्रीमद् राजचंद्रजी आत्मज्ञानी थे, जिनको सात वर्ष की छोटी उम्र में अपने पूर्वभव का ज्ञान हो गया था, वे १६ वर्ष की आयु में लिखते हैं कि—

पुण्य के बहु पुंज से शुभदेह मानव का मिला,
तो भी अरे! भवचक्र का आंटा नहीं एक भी टला।

ऐसा महंगा मनुष्य अवतार प्राप्त हुआ, इसमें आत्मा का भान करके भवचक्र किसप्रकार दूर हो ? यह करने जैसा है। श्रेणिक राजा महावीर भगवान के समय में हुए थे, इनको पहले आत्मा का भान नहीं था। इन्होंने वीतरागी दिगम्बर मुनि की विराधना करके उनके गले में सर्प डालकर उपद्रव किया, इसलिये नरक की आयु का बंध किया। बाद में मुनि के पास धर्म का श्रवण करके आत्मा को पहिचानकर क्षायिक सम्यक्त्व सहित तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया। आनेवाली चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। जैसे महावीर भगवान थे, वैसे ही यह

तीर्थंकर होंगे; यह किसका प्रताप ? कि अंदर सम्यग्दर्शन था, आत्मा का भान था, इसलिये एक ही भव में वह तीर्थंकर होंगे।

जिसप्रकार कस्तूरी की सुगंध मृग की नाभि में है किंतु बाहर में ढूँढ़ता है, इसीप्रकार चैतन्य का सुख आत्मा में ही है किंतु अज्ञानी बाहर में ढूँढ़ता है। आत्मा देह-राग से पार ज्ञानानंदस्वरूप है, ऐसे आत्मा की पहिचान करना चाहिये। इसके लिये आचार्यदेव कलश १३८ में कहते हैं कि:—

अरे जीवो! अनादि संसार में राग से अंधे बनकर तुम सोये हुए हो, राग को ही निजपद मानकर तुम सोये हुए हो; किंतु तुम्हारा निजपद तो ज्ञानमय है, उस ज्ञानमय शुद्ध पद को तुम पहिचानो।

प्रश्न:—आप तो अधिकतर आत्मा को ही समझाते हो, किंतु कर्म दु:खी करते हैं इसका क्या ?

उत्तर:—आत्मा बैठा है कि नहीं ? आत्मा जागृत होकर पुरुषार्थ करे, उसको कहीं कर्म रोकते नहीं हैं। एक दस वर्ष का बालक आठ वर्ष के छोटे बालक के साथ झगड़ा करने गया, छोटे बालक ने दस वर्ष के लड़के को मारा, वह रोता हुआ माँ के पास जाकर शिकायत करने लगा कि माँ! इसने मुझे मारा! माँ कहती है कि—अरे डींगा! तू इतना बड़ा और तुझे छोटा बालक मारे! इसीप्रकार महान पुरुषार्थ का भंडार भगवान आत्मा, वह ऐसा कहे कि जड़ कर्म ने मुझको मारा!—तो जिनवाणी माता कहती है कि अरे मोटा डींगा! तू अनंत ज्ञान का भंडार, अनंत वीर्य-बल का स्वामी, तू तेरे स्वरूप को भूलकर अंधा होकर, व्यर्थ में कर्म का दोष निकालता है; इसलिये जागृत हो! तेरा आत्मा शुद्ध ज्ञानमय है—ऐसा तू पहिचान।

प्रभु! राग तेरे आत्मा का सच्चा स्वरूप नहीं, किंतु तूने आत्मा को रागवाला ही मान लिया है। आत्मा का सच्चा स्वरूप तो ज्ञान-आनंदमय है, यही तेरा सच्चा पद है; इसको तू पहिचान। जिसप्रकार कच्चा चना बोने से अंकुरित होता है, और उसका स्वाद कषायला होता है, किंतु इसको सेकने से मिठास प्रदान करता है, यह मिठास कहाँ से आई ? चने में भरी थी, वही प्रगट हुई है; सेकने के बाद वह अंकुरित नहीं होता। इसीप्रकार अज्ञान से आत्मा दु:ख के-कषाय के स्वाद का वेदन करके जन्म-मरण करता है; किंतु सच्चे श्रद्धा तथा सच्चे ज्ञान के द्वारा उसको सेकने से आनंद का स्वाद आता है, इसके बाद जन्म-मरण रहते नहीं। इसलिये राग से रहित शुद्ध ज्ञानस्वरूप अपने आत्मा को पहिचानना—ऐसा उपदेश है।●●

दग्ध द्वारिका... और... पांडवों का वैराग्य

द्वारकानगरी जब जलकर राख हो गई, श्रीकृष्ण तथा बलभद्र जैसे महान् पराक्रमी योद्धा भी उस नगरी को तो नहीं बचा सके किंतु अपने माता-पिता को भी नहीं बचा सके। वहाँ से हस्तिनापुर जाते हुए रास्ते में पानी के प्यासे श्रीकृष्ण की अपने भाई के हाथ से मृत्यु हो गई, संसार से विरक्त बलभद्रजी दीक्षा लेकर स्वर्ग चले गये। इसके बाद पांडवों ने द्वारकानगरी का पुनः निर्माण किया तथा श्रीकृष्ण के भाई जरत्कुमार (जिसके तीर से श्रीकृष्ण की मृत्यु हुई) को द्वारिका के राज्यसिंहासन पर बिठाया...

—उस समय श्रीकृष्ण के समय की द्वारिकानगरी की चहल-पहल तथा सुंदरता का स्मरण हो जाने से पांडव शोकातुर हो गये, तथा वैराग्य से इसप्रकार चिंतवन करने लगे—अरे इस द्वारिकानगरी का निर्माण देवों ने किया था, फिर आज जलकर के राख हो गई। श्रीकृष्णा यहाँ जिस समय राज्य करते थे, प्रभु नेमिकुमार जिनकी राज्यसभा में विराजमान होते थे तथा जहाँ प्रतिदिन नये-नये मंगल उत्सव होते थे, वह नगरी आज सुनसान हो गई। कहाँ चले गये रुक्मणि आदि रानियों के सुंदर महल! तथा कहाँ चले गये आनंददायी पुत्र इत्यादि कुटुंबीजन! वास्तव में कुटुंब इत्यादि संयोग क्षणभंगुर हैं, यह तो बादल के समान देखते-देखते नष्ट हो जाते हैं; संयोग तो नदी के बहते हुए प्रवाह के समान हैं, इनको स्थिर रख सकते नहीं। संसार की ऐसी विनाश लीला को देखकर विवेकी जीव विषयों के राग से विरक्त हो जाते हैं।

धर्मात्मा पांडव कुमार फिर वैराग्य से संसार के स्वरूप का विचार करने लगे—जिन स्त्री-पुत्र-पौत्र इत्यादि को वास्तव में जीव अपने मानता है, वह अपने हैं ही नहीं; जहाँ यह समीप में रहनेवाला शरीर भी अपना नहीं, वहाँ दूर का परद्रव्य तो अपना कैसे हो सकता है ?—बाह्य वस्तु अपनी नहीं, फिर भी उस बाह्य वस्तु में सुख-दुःख मानना, यह मात्र कल्पना है। अपनी वस्तु तो वास्तव में आत्मा ही है। विषय-भोग भोगते समय जीव को सुखकर लगते हैं किंतु बाद में वह नीरस लगते हैं तथा इनका फल दुःखरूप है, किंतु मूढ़ जीव उनके सेवन से अपने को सुखी मानता है; ऐसे जीव आँख होते हुए भी अंधे होकर दुःख के कुए में गिरते हैं तथा दुर्गति में जाते हैं। दाद की खुजली के समान विषयों के परिणाम दुःखदायक ही हैं, तथा इनसे जीव को कभी भी तृप्ति नहीं हो सकती। नित्य ज्ञानानंदमय पूर्णस्वरूप में संतोष समाधानरूप श्रद्धा-ज्ञान-लीनता द्वारा इसके (पराश्रय के) त्याग से ही तृप्ति होती है। पाँचों

इन्द्रियों के विषयों में मग्न जीव पंचविध परिवर्तनरूप संसार में चक्कर लगाता ही है; मिथ्यात्व की वासना के कारण अपना हित-अहित का विचार कर सकता नहीं, तथा धर्म की ओर उसकी रुचि नहीं लगती। इसलिये मोक्ष-सुख के इच्छुक हे भव्य जीवो! स्वद्रव्य के आश्रय द्वारा मिथ्यात्व तथा समस्त विषय-कषायों का त्याग करके, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म का पुरुषार्थ करो।

इसप्रकार वैराग्यपूर्वक विचार करते-करते पांडव द्वारिका से प्रस्थान करके पल्लवदेश में आये तथा वहाँ विराजित श्री नेमिनाथ तीर्थंकर के दर्शन किये, केवलज्ञान की स्तुति की, तथा धर्म की रुचिपूर्वक उनका उपदेश श्रवण किया; साथ-साथ प्रभु की वाणी में अपना पूर्वभव का वर्णन श्रवण करके पांडवों को विशेष आत्मशुद्धिपूर्वक अत्यंत वैराग्य उत्पन्न हुआ, संसार से विरक्त होकर प्रभु के समक्ष दीक्षा धारण करके मुनि हो गये; माता कुंती, सुभद्रा, द्रोपदी ने भी राजमती अर्जिका के समीप जाकर दीक्षा ग्रहण की। इसके बाद विहार करते-करते यह पांडव मुनिवर सौराष्ट्र देश में आये और सिद्धक्षेत्र शत्रुंजयतीर्थ के ऊपर आत्मध्यान करने लगे।

कैसे होंगे पांडव मुनिवर... अहो! उन्हें वंदन लाख...
राजपाट त्याग किया ऊँचे स्थल में निवास,
जिनने छोड़ा स्नेहियों का साथ.... अहो०
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धारक (२),
करते हैं कर्मों को जलाकर राख... अहो,
शत्रु या मित्र नहीं कोई उनके ध्यान में,
बसते हैं वह निजस्वरूप आवास में... अहो०
प्रमत्त-अप्रमत्त भाव में वह झूलते,
निज रस आत्मिक आनंद में रमते... अहो०
राग या द्वेष नहीं कोई उनके ध्यान में,
मग्न रहते हैं निज आतम ध्यान में.... अहो०
परिषहों की उन्होंने उपेक्षा करके,
शीघ्र किया सिद्धि में निवास जाकरके... अहो०

(संवत २००६ में शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा के समय पर्वत पर भक्ति हुई थी उसमें से)

सत्य-असत्य की परीक्षा

(१) एक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर ज्योतिषी देवों का इंद्र हुआ।—यह बात सत्य नहीं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव कभी ज्योतिषी देवों में जन्म नहीं लेता, वैमानिक देवों में ही जन्म लेता है। ज्योतिषी देवों में जन्म लेनेवाला जीव मिथ्यादृष्टि ही होता है; उसके बाद कोई-कोई जीव आत्मज्ञान करके सम्यग्दृष्टि हो सकते हैं।

(२) एक सम्यग्दृष्टि मरकर दूसरे नरक में गया।—यह बात असत्य है; सम्यग्दर्शन सहित कदाचित् (पूर्वबद्ध आयु के कारण) नरक में जावे तो वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि प्रथम नरक में जाता है, दूसरी नरक में नहीं जाता, यह नियम है। जो क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि था वह मिथ्यादृष्टि होकर दूसरे नरकों में जाने के पश्चात् वहाँ भूतार्थज्ञान के आश्रय से फिर सम्यग्दर्शन प्रगट कर सकता है।

(३) एक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर पहले नरक में गया।—(वह तो पूर्व में अज्ञानदशा में नरक आयुष्य का बंध हो गया हो, पश्चात् क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया हो, ऐसे जीव की यह बात है।)

(४) एक जीव तीर्थंकर प्रकृति बाँधने के बाद तीसरे नरक में गया—यह बात संभव है। नरक में तीसरे नरक तक तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता हो सकती है। किसी जीव ने मिथ्यात्वदशा में नरक गति का आयुष्य बाँध लिया; आयुष्य के अंतिम मुहूर्त में फिर मिथ्यात्वदशा प्राप्त करके वह (तीर्थंकर प्रकृति सहित) तीसरे नरक में जाता है; वहाँ जाने के बाद अंतर्मुहूर्त में वह जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। (ऐसा जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि नहीं होता; सम्यग्दर्शन का अस्तित्व प्रथम नरक तक ही संभवित है, इससे नीचे नहीं।)

(५) एक जीव तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने के बाद चौथे नरक में गया—यह बात संभव नहीं हो सकती।

(६) एक जीव ने छठे नरक से निकलकर मनुष्य होकर इसके बाद मुनिव्रत धारण किया।—यह सत्य नहीं है। छट्ठे नरक से निकलनेवाला जीव मनुष्य हो सकता है किंतु इसी

भव में वह मुनिदशा प्राप्त नहीं कर सकता। इस संबंध में निम्नलिखित नियम हैं—

❀ सातवें नरक से निकलनेवाला जीव मिथ्यात्वसहित ही वहाँ से निकलता है एवं तिर्यंच ही बनता है, मनुष्य नहीं।

❀ छठे नरक से निकलनेवाला जीव सम्यक्त्वसहित भी वहाँ से निकलकर मनुष्य हो सकता है, किंतु व्रतधारी नहीं हो सकता।

❀ पाँचवें नरक से निकलनेवाला जीव व्रतधारी हो सकता है किंतु केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता।

❀ चौथे नरक से निकलनेवाला जीव केवलज्ञानी हो सकता है किंतु तीर्थंकर नहीं हो सकता।

❀ तीसरे-दूसरे या पहले नरक से निकलनेवाला जीव तीर्थंकर भी हो सकता है। (किंतु नरक में से निकला हुआ जीव चक्रवर्ती या बलदेव वासुदेव नहीं हो सकता।)

(इनके अतिरिक्त चार गति में गमनागमन संबंधी जाननेयोग्य अन्य भी अनेक नियम हैं, जिनका समयोचित आत्मधर्म में वर्णन किया जायेगा।)

(७) एक जीव चौथी नरक में से निकलकर मनुष्य होकर केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष गया, यह बात संभव हो सकती है, किंतु वह तीर्थंकर आदि पदवी का धारक नहीं होता।

(८) एक जीव आत्मा को पहिचानकर मुनि होकर क्षपकश्रेणी लगाकर स्वर्ग में गया—यह संभव नहीं। क्षपकश्रेणी लगानेवाला जीव उसी भव मोक्ष में जाता है, वह कभी स्वर्ग में जा सकता नहीं।

(९) एक जीव तीसरे गुणस्थान में मरकर देवलोक का देव हुआ।—(यह बात सत्य नहीं, क्योंकि तीसरे गुणस्थान में किसी जीव का मरण नहीं होता)।

(१०) भरतक्षेत्र का कोई सम्यग्दृष्टि जीव मरकर सीमंधर प्रभु के पास में गया एवं वहाँ सम्यग्दर्शन तथा क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया, यह बात संभव है; परंतु पंचम काल में जन्म लिये हुए जीव के लिये यह संभव नहीं, क्योंकि उस जीव में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने की योग्यता नहीं है।

अमूल्य तत्त्व विचार

एक बार रात्रिचर्चा के शांत-आध्यात्मिक वातावरण में पूज्य गुरुदेव ने कहा—

'निर्दोष सुख निर्दोष आनंद लो मिले वहाँ से भले,
यह दिव्य शक्तिमान जिससे जंजीरों से नीकले।'

—देखो, श्रीमद् राजचंद्रजी ने मात्र १६ वर्ष की आयु में इस काव्य की रचना की थी; इसमें कितनी सरस बात लिखी है! यह आत्मा दिव्य चैतन्यशक्तिवाला परमेश्वर है, किंतु यह अपनी शक्ति को भूलकर, भ्रम के कारण संसार के कारागृह क जंजीरों फंसा हुआ है... इसमें से किसप्रकार मुक्त हो?—कि 'मैं कौन हूँ तथा मेरा वास्तविक स्वरूप कैसा है—इसकी बराबर पहिचान करे तो भ्रमण से मुक्त होकर निर्दोष सुख तथा निर्दोष आनंद प्रगट हो जाये।

'परवस्तुमां नहीं मुंझवो, एनी दया मुझने रही,
ए त्यागवा सिद्धांत के पश्चात् दुःख से सुख नहीं।'

देखो तो सही! १६ वर्ष की आयु में कहते हैं कि आत्मा को परपदार्थ में मोहित नहीं होना चाहिये। अरे! दिव्यशक्तिवाला आत्मा परपदार्थ में मोहित हो जाता है—तल्लीन हो जाता है, यह देखकर मुझे दया आती है! दिव्यशक्तिवाले चैतन्य के निर्दोष सुख को भूलकर परवस्तु में सुख मानने से उस मिथ्यामान्यता में आत्मा मूर्छित हो गया है; पर में सुख की कल्पना करता है किंतु उसको सुख प्राप्त नहीं होता—इसलिये वह पराश्रितभाव में आकुलित है। ऐसा देखकर ज्ञानी को दया आती है कि अरे! चैतन्य भगवान आत्मा स्वयं अपने को भूलकर पर में मोहित हो गया!—यह मोहितपना अर्थात् पर में सुखबुद्धिरूप मूर्च्छा का त्याग करने के लिये यह सिद्धांत-नियम है कि जिसके पीछे दुःख है, उस भाव में सुख नहीं... सम्यग्दर्शनादि धर्म भावनाओं में वर्तमान में भी सुख तथा उसके फल में भी सुख; रागादि विकारीभावों में वर्तमान में भी दुःख तथा उनके फल में संसार के जन्म-मरण रूपी दुःख—इसलिये उनमें सुख नहीं। ऐसा समझकर उन रागादि भावों से भिन्न अपने चिदानंदस्वरूप को लक्ष में लेकर, विवेकपूर्वक, शांत भाव से उसका चिंतवन करना; ऐसा करने से मोहितपना दूर होकर निर्दोष आत्मसुख प्रगट होता है।

जिज्ञासुओं के साथ तत्त्वचर्चा

❀ आकाश में बना सुंदर महल—

एक बार अभिनंदनस्वामी आकाश की ओर देख रहे थे। उस समय आकाश में एक अति सुंदर महल दिखलाई दिया। बादलों की ही कोई ऐसी अद्‌भुत रचना हुई थी। देखते-देखते बादल तो लोप हो गये और महल भी लोप हो गया।

यह दृश्य देखकर अभिनंदनस्वामी को वैराग्य उत्पन्न हुआ; शरीर तथा संसार की क्षणभंगुरता का विचार करने लगे। अरे! इस शरीर को चाहे जैसे उत्तम पदार्थों से पोषण किया जाये तो भी निश्चय से नष्ट होनेवाला है। इस जगत में जिसके आयु है, उसका मरण होना निश्चित है; इसलिये जो मरण से भयभीत हो, उसे अपना त्रैकालिक निर्भय पद पहिचानकर उसी में एकत्व की दृढ़ता और ऐसी वीतरागता प्रगट करना चाहिये कि नवीन भव का आयुष्य ही न बँधे, अर्थात् मरण ही न हो, एवं आयु से रहित अविनाशी सिद्धपद प्रगट हो जाये। आयुकर्म का नाश होने पर ही आठों कर्म से रहित सिद्धपद प्रगट होता है।

लोग जीवित रहने के लिये आयु की आशा रखते हैं, किंतु आयु का बंधन जहाँ है, वहाँ अवश्य मरण है। जीव का जीवन आयु से नहीं किंतु चेतन से है। चेतन में ऐसी शक्ति है कि आत्मा को सदाकाल जीवित रखता है। जो अपना अनुभव चेतनस्वरूप करता है, उसका कभी मरण नहीं होता।

❀ प्रश्न—'मुझे सम्यग्दर्शन प्रगट करना है'—ऐसी भावना को राग कहा जाये या नहीं?

उत्तर—भावना दो प्रकार की है; एक इच्छारूप दूसरी परिणतिरूप। सम्यक्त्वभावरूप जो परिणमन है, वह सम्यक्त्व की परमार्थ भावना है। जैसे 'सम्यग्दृष्टि अपने शुद्धात्मा को भाता है' यह भावना शुद्ध परिणमनरूप है। तथा अप्राप्त को प्राप्त करने की इच्छारूप जो भावना है, वह राग है।

❀ अंतरिक्ष में जाना सरल है, परंतु निर्मल भेदविज्ञान की प्रवीणता के बिना अंतर में जाना कठिन।

❀ अंतर में जाने के लिये शुद्धनय तथा स्वसन्मुखतारूपी साधन का विज्ञान जैसा भारत के पास है, वैसा अन्य के पास में नहीं।

❀ मेरुपर्वत एक लाख योजन अर्थात् चालीस करोड़ मील ऊँचा है। जैन सिद्धांतों के अनुसार मनुष्यों का गमन वहाँ तक हो सकता है। चंद्रलोक तो केवल ८०० योजन अर्थात् ३२ लाख मील ही ऊँचा है। अर्थात् वहाँ तक मनुष्यों का गमन हो सकता है इसमे आश्चर्य जैसी बात नहीं, किंतु चंद्रलोक वह देवलोक है, मनुष्य वहाँ नहीं रह सकता।

❀ असंख्य जीव मरकर चंद्रलोक में उत्पन्न होते हैं; परंतु चंद्रलोक में ऐसे ही जीव उत्पन्न होते हैं जिनको आत्मा का ज्ञान नहीं होता। (वहाँ जाने के बाद कोई जीव आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर ले, यह बात अलग है, किंतु वहाँ उत्पन्न होते समय आत्मा का ज्ञान नहीं होता)

—: एक सुंदर वस्तु को खोज निकालो :—

एक अत्यंत सुंदर वस्तु।

— जिसके पांव पाताल का स्पर्श करते हैं।

— तथा सिर स्वर्ग का स्पर्श करता है।

— जिसकी गोद में भगवान स्नान करते हैं।

— संत जिसके दर्शन करते हैं।

— देव जिसकी सेवा करते हैं।

— अपना वह सबसे ऊँचा तीर्थधाम...!

— जितने तीर्थंकर हुए सभी वहाँ जाते हैं।

कहिये, वह वस्तु कौनसी? (सुमेरु पर्वत)

उत्तर पुराण में कहते हैं कि:—

❀ यमराज की डाढ़ के बीच में रहना और जीने की इच्छा करना—यह कैसा मोह!

भाई! मरण से बचना हो तो यमराज के मुँह में से बाहर निकलकर जहाँ यमराज नहीं पहुँच सकते हों, ऐसे मोक्षधाम में निवास कर।

किसी भी गति में जीव की आयु असंख्य ही समय की है, फिर भी उसी को शरण मानता है; किंतु आश्चर्य है कि एक के बाद एक व्यतीत होनेवाले आयु के क्षण ही उसको यमराज की ओर खींचकर ले जा रहे हैं।

हे जीव! अनंत काल का जीवन प्रदान करनेवाली जो चेतना है, उसकी पहिचान, यह चेतना ही प्राणी की मृत्यु के मुख में से बाहर निकालनेवाली है।

दरिद्रता का माप

दरिद्रता कैसे दूर हो?

❀ कितना धन हो जाये तो दरिद्रता मिट जाये? इसका कोई माप नहीं।

❀ लोभ वह दरिद्रता है; नित्य ज्ञातास्वरूप में संतोष द्वारा लोभ और दरिद्रता दूर हो सकती है।

❀ जितना लोभ, उतनी दरिद्रता, इस दरिद्रता को दूर करने का उपाय?—निर्लोभ होना।

❀ निर्लोभ होने की रीति?—ज्ञानवैभव से मेरा आत्मा परिपूर्ण है, उसका ध्यान करना।

अरे जीव! तुझे मोक्षमार्गी होना है न! तो संसारमार्गी जीवों से मोक्षमार्गी जीवों के लक्षण सर्वथा भिन्न होते हैं। इसलिये प्रतिकूलता इत्यादि के समय संसारी जीवों के समान प्रवर्तन मत कर; किंतु मोक्षमार्गी धर्मात्माओं की प्रवृत्ति को लक्ष में लेकर उनके समान प्रवर्तन कर; मोक्षमार्ग में दृढ़ रहना... मोक्षमार्गी धर्मात्माओं के जीवन को तेरे आदर्शरूप रखना।

भाई, जीवन में प्रतिकूलता के छोटे-बड़े प्रसंग तो आयेंगे ही, कभी मान-अपमान के प्रसंग प्राप्त होंगे, किंतु ऐसे प्रसंगों के समय नित्य चैतन्य के स्वामित्व और ज्ञान-वैराग्य के बल से मोक्षमार्ग को सुरक्षित रखना। किसी को प्रतिकूल मानकर मोक्षमार्ग से विचलित मत हो जाना; किंतु मैं तो मोक्षमार्गी हूँ, मेरे तो मोक्ष की साधना करना है—इसप्रकार दृढ़ता से सहनशीलता धारण करना। ऐसे प्रसंग के समय यदि तू भी साधारण संसारी जीवों के समान ही प्रवर्तन करेगा तो उनमें और तेरे में अंतर क्या रहा? संसारी जीवों से मोक्ष की साधना करनेवाले जीवों के परिणामों की धारा सर्वथा भिन्न प्रकार की होती है।

भावनगर में—

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव

(वैशाख कृष्णा ११, तारीख १-५-७०) अनेक प्रकार की लौकिक प्रवृत्तियों से गूँजनेवाला भावनगर शहर आज नयी-नयी धार्मिक प्रवृत्तियों से गूँज रहा है। 'गाँधीस्मृति' के पास ए.वी. स्कूल के मैदान में आदिनाथनगर से लेकर भावनगर स्टेशन तक हर्षयुक्त भक्तों के वृंद और शहर के नर-नारी स्वागत-जुलूस में शामिल हो रहे हैं।

कानातलाब गाँव में जिनेन्द्र भगवान की प्रतिष्ठा के पश्चात् लाठी-सोनगढ़ होकर पूज्य श्री कानजीस्वामी भावनगर पधारे हैं। उल्लासपूर्ण स्वागत हुआ, भव्य जुलूस में सबसे आगे रत्नत्रय का झंडा लहराते हुए तीन हाथी; हाथों में मंगल कलश लिये एवं केशरिया वस्त्र पहने हुए ८१ कुमारिकाएँ आदि विशेषताओं से सुशोभित स्वागत-जुलूस देखकर नगरजन परम हर्ष का अनुभव कर रहे थे।

जुलूस आदिनाथनगर (प्रतिष्ठामंडप) में आ पहुँचा। मंडप की शोभा अनेरी थी। मंगल स्वागतगीत के पश्चात् हजारों श्रोताओं की विशाल सभा में मंगल प्रवचन में गुरुदेव ने कहा कि 'यह मांगलिक हो रहा है। आनंदस्वरूप भगवान आत्मा सदा अपने ज्ञानस्वरूप में विद्यमान है, उसके स्पर्शन द्वारा-स्वसन्मुखता के द्वारा जो अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव होता है, वह मंगल है। आत्मा परिपूर्ण ज्ञान-आनंदस्वभावी है, सर्व जीव ज्ञानमय सिद्ध परमात्मा समान हैं; कोई जीव अपूर्ण नहीं है कि जिसे कोई कुछ दे। ऐसा पूर्णस्वरूप आत्मा मैं हूँ—ऐसा भान करने से जो सम्यक् बीज का उदय हुआ, वही बढ़कर केवलज्ञान और परमात्मदशारूपी पूर्णिमा होगी। वह महान मंगल है; इस आत्मा को परमेश्वर कैसे बनाया जाये, उसकी यह बात है।

धर्मात्मा शुद्धनय द्वारा जानता है कि मैं अपने चैतन्यरस से सदा भरा हुआ एक हूँ, मेरे स्वरूप में मोह नहीं; मैं शुद्ध चेतना का समुद्र ही हूँ। ऐसे चैतन्यसमुद्र में अवगाहन करने से आनंद की प्राप्ति और मोह का नाश हो, वह अपूर्व मंगल है।' मंगल प्रवचन के पश्चात् प्रतिष्ठाविधि का प्रारंभ हुआ।

प्रथम मुमुक्षुमंडल के अध्यक्ष श्री हिम्मतलाल हरगोविंद शाह द्वारा झंडारोपण हुआ, तथा श्री हीरालाल चुनीलाल भायाणी ने मंडप में श्रीजी को विराजमान किया, पंचपरमेष्ठी भगवंतों का मंगल पूजन विधान, इंद्रों द्वारा मृत्तिकानयन, अंकुरारोपण, इंद्र प्रतिष्ठादि विधि हुई। आनंद-उल्लासभरे वातावरण के बीच जिनेन्द्र भगवान के पंचकल्याणक का महामहोत्सव प्रारंभ हुआ।

उत्सव के समय प्रवचन में प्रतिदिन सवेरे समयसारजी तथा दोपहर को पद्मनंदिपच्चीसी में से श्री ऋषभजिन स्तोत्र पर प्रवचन चलते थे।

भावनगर करीब तीन लाख जनसंख्यावाला वैभवशाली नगर है, जो सोनगढ़ से २० मील पूर्व दिशा में बंदरगाह है। प्राचीन समय से ही यहाँ जैनधर्म की गौरव गाथा है, समीप में ही प्राचीन घोघा बंदरगाह है, जिसके प्रसिद्ध प्राचीन अवशेष आज भी दिखाई दे रहे हैं, जहाँ दो हजार वर्ष से भी अति प्राचीन वीतराग जिनबिंब विराजमान हैं, स्फटिकमणि की दो प्रतिमाजी हैं। सोनगढ़ से १४ मील पर सिद्धक्षेत्र शत्रुंजय-पालीताना हैं। भावनगर में जैनसमाज की संख्या २० हजार करीब है, श्वेतांबर-दिगंबर दोनों समाज के बीच परस्पर सहयोग और प्रेमभरा वातावरण है। यहाँ अति आवश्यकता होने से दो लाख की लागत का एक भव्य जिनालय दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा गाँधीस्मृति के पास माणेकवाडी में बना है।

वैशाख वदी १२ के प्रातः नांदी विधान एवं इंद्रप्रतिष्ठा के पश्चात् माता-पिता होने का सुयोग खैरागढ़ निवासी शेठ श्री खेमराजजी तथा सौ. धूलीबहिन को प्राप्त हुआ था, इंद्रों का जुलूस, यागमंडल पूजा सुंदर विधियुक्त हुई। रात्रि को इंद्रसभा, दिगकुमारी देवियों द्वारा माता की सेवा, धर्मचर्चा, १६ स्वप्न, उनका फल और उसके द्वारा प्रथम तीर्थंकर का गर्भावतरण जानकर सर्वत्र आनंद फैल रहा है आदि दृश्य हुए। प्रतिष्ठाचार्य श्री मुन्नालालजी समगौरिया (सागर निवासी) ने कहा कि क्या भगवान माता के गर्भ में आते हैं? नहीं; सर्वज्ञ भगवान हो चुका, ऐसा जीव माता के गर्भ में नहीं आता किंतु अविरत सम्यग्दृष्टि साधकजीव जिसने पूर्व भव में तीर्थंकर नामकर्म का बंधन कर लिया है, वह गर्भ में आता है जो आगे आराधना में आगे बढ़कर उसी भव में सर्वज्ञ वीतराग भगवान होता है। फिर उसे कभी अवतार नहीं होता।

मरुदेवी माता को अध्यात्मचर्चा का प्रेम था। उन्होंने देवियों से प्रार्थना की—इस आनंदमय प्रसंग पर धर्म-चर्चा सुनाईये। आज्ञानुसार देवियाँ धर्मचर्चा करने लगीं—

प्रश्नः—कहिये, मोक्ष का उपाय क्या है ?

उत्तरः—निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

प्रश्नः—देवी ! इस भरतक्षेत्र में मोक्ष का मार्ग कौन खोलेंगे ?

उत्तरः—भगवान ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर होकर मोक्ष का मार्ग खोलेंगे।

प्रश्नः—यह बताइये कि आत्मा क्या कर सकता है ?

उत्तरः— आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानात् अन्यत् करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा, मोहोऽयं व्यवहारिणाम्॥

अर्थः—प्रत्येक आत्मा ज्ञानरूप ही है, स्वयं ज्ञान होने से ज्ञान के सिवा कुछ भी नहीं करता, अज्ञानी जीव मात्र मानता है कि आत्मा परभावों का कर्ता है, ऐसा मानना तो लौकिक व्यवहारीजनों का मोह है।

प्रश्नः—इस आत्मा के लिये ध्रुव-शरणरूप कौन है ?

उत्तरः—सुनो, लक्ष्मी शरीर सुख-दुःख अथवा शत्रु-मित्र जना अरे,
जीव को नहीं है ध्रुव, ध्रुव उपयोगात्मक जीव है।

प्रश्नः—इस आत्मा को उत्तम, मंगल और शरण कौन है ?

उत्तरः—निश्चय से अपना आत्मा ही उत्तम, मंगल और शरण है, व्यवहार से पंच परम गुरु को उत्तम, मंगल और शरणरूप जानना व्यवहारनय से ही ठीक है।

प्रश्नः—अपने हित के लिये कैसा विचार करना चाहिये ?

उत्तरः—सुनिया ज्ञानी कहते हैं कि—

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुखधाम;
कितना कहे अन्य यदि, कर विचार तो पाम।

प्रश्नः—विश्व में सबसे श्रेष्ठ कार्य क्या है ?

उत्तरः—शुद्ध आत्मा का अनुभव करना, यही श्रेष्ठ कार्य है।

प्रश्नः—आत्मानुभव से क्या होता है ?

उत्तरः—अपने से ही अपने में अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव होता है और मोक्ष की झंकार आती है।

प्रश्नः—जगत में श्रेष्ठ स्त्री कौन है ?

उत्तरः—जिसके पास ज्ञानचेतना है, वह धन्य है, उनको हमारा नमस्कार है।

प्रश्नः—भगवान ऋषभदेव प्रभु का आदेश क्या है ?

उत्तरः—एकत्व-विभक्त ऐसा आत्मा का ज्ञान करो, जिससे अविनाशी मोक्षपद जो सबसे महान है, वह मिलता है। इसप्रकार माताजी का समय देवियों के साथ धर्मचर्चा सहित आनंदमय जा रहा है।

वैशाख वदी १३ को सायंकाल प्रवचन के पश्चात् १०८ कलशों की जलयात्रा, और रात्रि में जिनेन्द्रदेव की भक्ति का कार्यक्रम था।

वैशाख वदी १४ के सवेरे इंद्र-सभा में एकाएक तीर्थंकरजन्मसूचक मंगलचिह्न प्रगट हुए—इंद्रासन कम्पायमान हुआ, शंखनाद हुआ, देव दुंदुभी आदि वाद्य बिना बजाये बजने लगे। भगवान ऋषभदेव का जन्म हुआ है, ऐसा अवधिज्ञान द्वारा जानकर इंद्र ने बाल तीर्थंकर को सात डग आगे चलकर नमस्कार किया; इंद्र-इंद्राणी ने निम्नोक्त शब्दों द्वारा अपना परम हर्ष-आनंद और भक्तिभाव व्यक्त किये:—

१. अहो, धन्य... भरतक्षेत्र की अयोध्या नगरी में आज तीर्थंकर भगवान का अवतार हुआ है। भगवान ऋषभदेव इस भरतक्षेत्र में मोक्ष के फाटक खोलेंगे, धन्य उनका अवतार!! आपका अवतार समस्त विश्व के लिये आनंदकारी है।

२. आकाश में से मानों आनंद के पुष्प बरस रहे हैं।

३. अहा, १०-१० भव से प्रारंभ की हुई आत्मसाधना भगवान इस भव में पूर्ण करेंगे और परमात्मा होकर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

४. तीर्थंकर भगवान अकेले मोक्ष नहीं जाते, साथ में असंख्य जीवों को भी मोक्षपद में ले जायेंगे।

५. स्वर्गलोक में यह मंगल घंटियाँ स्वयमेव बज रही हैं—विश्व को प्रेम सहित बुला रही हैं कि अहो! भव्य जीवों! तीर्थंकर भगवान का जन्मोत्सव देखने के लिये आओ!

६. तीर्थंकर की अलौकिक महिमा का चिंतन करने से बहुत जीव तो स्वसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर लेते हैं।

७. अहा, धन्य हैं वे जगतमाता मरुदेवी माता... कि जिनकी गोदी में तीर्थंकर भगवान विराज रहे हैं।

८. धन्य! जिनकी मुद्रा देखने से आत्मस्वरूप जाना जाता है।

९. 'शुद्धोसि बुद्धोसि' कहकर मरुदेवी माता उनको लोरियाँ गाकर झुलावेंगी...

१०. ऋषभकुमार बड़े होकर निर्ग्रंथमुनि होंगे, भरतक्षेत्र में धर्मतीर्थ चलावेंगे।

११. भगवान तो मोक्षगामी हैं और उनके सभी पुत्र भी मोक्षगामी व चरमशरीरी होंगे।

१२. कल्पवृक्ष सूख गये, तब ऋषभदेव ने कल्पवृक्ष का काम किया।

१३. भगवान ने जगत को अपूर्व आत्मविद्या समझा दी।

१४. तीर्थंकर के अवतार की बात सुनते ही हृदय में आनंद-सागर उछलता है।

१५. प्रभो! चर्मचक्षु द्वारा देखने पर भी परम हर्ष होता है तो ज्ञानचक्षु द्वारा आपके देखने पर जो अद्भुत परमानंद होगा, उसकी क्या बात!!

१६. भगवान श्री आदिनाथ प्रभु की जय... चलो भगवान के जन्म का महोत्सव मनाने आज हम सब अयोध्यानगरी चलें; स्वर्ग के दिव्य वैभव और ऐरावत हाथी सहित आत्मानंद द्वारा तीर्थंकर प्रभु का जन्मोत्सव मनायें।

इंद्रों के साथ-साथ इंद्राणियों ने भी प्रभु के जन्मोत्सव में आनंद सहित अपना भक्तिभाव प्रगट किया—

१. शची—अहा, धन्य! छोटे से तीर्थंकर भगवान को गोद में उठाने से आज मेरे दोनों कर पावन हो गये, मेरा जीवन आज धन्य हो गया!

२. मंगल बधाई आज है... तीर्थंकर अवतार है।

३. दर्शन आनंदकार है, वह जगत के तारणहार हैं।

४. जो ज्ञानानंद दातार हैं, ज्ञान के भंडार हैं।

५. जो तीन ज्ञान से शोभित हैं त्रिकाल 'मंगल जीव' हैं।

६. जो चारों गति छुड़ाते हैं, पंचमगति प्राप्त कराते हैं।

७. आनंद मंगल आज है... देवों के बाजे बज रहे हैं...

८. अयोध्या तीर्थधाम है, जहाँ आदिनाथ अवतार है।

९. तीर्थंकर भगवान के अवतार के कारण हमारे इस स्वर्गलोक की शोभा से भी अधिक आज अयोध्या नगरी की शोभा बढ़ गई है।

१०. अहा, आज तो धर्म अंकुरित हुआ... रत्नत्रय के बाग खिले, सारी पृथ्वी सुखमय बन गई।

११. भगवान ने पूर्व में आठवें भव में मुनिवरों को नवधाभक्तिपूर्वक आहारदान दिया था और भोगभूमि में सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था!

१२. अहा, सम्यग्दर्शन का प्रताप कोई अनेरा है!

१३. भगवान ने सम्यग्दर्शन को ही धर्म का मूल कहा है।

१४. तीर्थंकर का अवतार अनेक जीवों को सम्यक्त्व का कारण है।

१५. धन्य हैं तीर्थंकर के माता-पिता, जिनके वहाँ जगत के तारणहार का अवतार हुआ।

१६. भगवान का यह अंतिम अवतार है। इस अवतार में वे आत्म-साधना को पूर्ण करके परमात्मा होंगे ही। चलिये, ऐसे भगवान का मंगल जन्मोत्सव मनाने जायें।

इसप्रकार जिनेन्द्रदेव की महिमा करते हुए इंद्र ऐरावत हाथी सहित आनंदपूर्वक जिन-जन्मोत्सव मनाने के लिये अयोध्यापुरी में आ पहुँचे और प्रदक्षिणा दीं। यहाँ अयोध्यानगरी में नाभि राजा के दरबार में भी ऋषभकुंवर के जन्ममंगल की आनंद बधाई लेकर छड़ीदार आ पहुँचे... नाभि राजा ने मंगल बधाई से प्रसन्न होकर कहा—अहो, तीर्थंकर के जन्म की बधाई सुनकर मेरे आत्मा के असंख्य प्रदेशों में मानों धर्म के अंकुर खिल उठे हैं, ऐसा महान आनंद होता है। नाभिराय ने भी आज्ञा दी कि सारी अयोध्यानगरी में प्रभु का जन्मोत्सव बड़ी धामधूम से मनाओ।

इसप्रकार सर्वत्र आनंद-मंगल छा रहा है... मंगल बाजे बज रहे हैं, पुष्पवृष्टि, रत्नवृष्टि हो रही है, नगरजन जन्मोत्सव देखने को उमंग सहित आ रहे हैं, अहा, राजसभा में देवांगनाएँ भी आनंद से मंगल-नृत्य कर रही हैं, ऐरावत पर इंद्र-इंद्राणी आ पहुँचे। इंद्राणी ने माता के पास जाकर बालतीर्थंकर को अपनी गोद में लेकर कृतार्थता का अनुभव किया। पश्चात् उन भगवान को इंद्र को सौंप दिया। जन्माभिषेक के लिये प्रभुजी की सवारी विराट जुलूस के रूप में गाजे-बाजे के साथ मेरुगिरि की ओर चली। अहा, क्या अद्भुत शोभा! ऐरावत हाथी पर तीर्थंकर ऋषभकुमार को देख-देखकर जनता आश्चर्य का अनुभव करती थी। भावनगर की जनता तो मुग्ध बनकर कहती थी कि अरे, यह नगरी अयोध्या कहाँ से बन गई! नगरजनों के कथनानुसार भगवान की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का ऐसा महा-महोत्सव इस नगर में २५० वर्ष बाद हो रहा है। प्रभुजी की जन्माभिषेक की सवारी में तीन हाथी उपरांत भव्य रथ गाड़ियाँ थीं। जुलूस

मेरुगिरि पहुँचा, तीन प्रदक्षिणा देकर मेरुगिरि के ऊपर श्री ऋषभकुमार तीर्थंकर के जन्माभिषेक का प्रारंभ हुआ, धन्य प्रथमेश ऋषभ! जिनके जन्माभिषेक का गौरव मिला होने से यह मेरुगिरि मध्यलोक में सबसे उत्तुंग बन गया है।

हजारों मनुष्य आनंदपूर्वक जिनेन्द्रदेव के जन्माभिषेक का अवलोकन कर रहे थे। भगवान के आत्मा ने अब जन्म-मरण समाप्त कर दिये और जगत को जन्म-मरणरहित स्वतंत्रता की प्राप्ति करने के लिये वीतराग मार्ग का उपदेश दिया... ऐसे प्रभु को देखकर भक्तों में मुक्तिमार्ग की प्रेरणा जागृत होती थी। जन्माभिषेक के पश्चात् इन बालतीर्थंकर को पुनः अयोध्या लाये, माता-पिता को पुत्र सौंपकर आनंद से तांडव नृत्यु किया। अनेक भक्त भी आनंदसहित नृत्य करने लगे। धन्य अवतार!

दोपहर को पालना झुलाने की विधि, रात्रि को जिनभक्ति तथा राजसभा के दृश्य हुए थे।

वैशाख वदी अमावस्या—आज प्रभु के वैराग्य का और दीक्षा-कल्याणक का दिन था। सभा में नृत्यु करती हुई नीलांजना देवी की आयु पूर्ण होती है। यह क्षणभंगुरता देखकर भगवान विशेष वैराग्यवंत होकर संसार से विरक्त हुए। लोकांतिक देव आये, स्तुति द्वारा वैराग्य की पुष्टि करते हुए कहा—

(१) हे प्रभो! आत्मा की अनुभूति के बल द्वारा इस संसार से आप विरक्त हुए हैं और साक्षात् मोक्षमार्ग के लिये आप तैयार हुए हैं, अतः आप जो वैराग्य-भावनाएँ भा रहे हैं, उन्हें हमारी अनुमोदना है।

(२) लक्ष्मी शरीर सुख दुःख अथवा शत्रु मित्र जनो अरे!
जीव को नहीं कोई ध्रुव, ध्रुव उपयोग आत्मक जीव है॥

—इस प्रकार ध्रुव स्वभाव की भावना द्वारा हे प्रभु! आप शीघ्र कैवल्यज्ञान की प्राप्ति करके दिव्यध्वनि द्वारा मोक्ष के द्वार खोलिये।

(३) प्रभो! आप जो वैराग्य की भावना भा रहे हैं, उसे शीघ्र पूर्ण करने के लिये निर्ग्रंथ मुद्रा अंगीकार करें... दीक्षा अंगीकार करके इस भरतक्षेत्र में असंख्य बरसों से लुप्त मुनिमार्ग प्रगट करें।

(४) विद्युत लक्ष्मी प्रभुता पतंग, आयु वह तो जल की तरंग।
पुरंदरी चाप अनंग रंग, क्या राचिये जहाँ क्षण का प्रसंग॥

(५) हे आदिनाथ देव! हम लोकांतिक देव अन्य किसी कल्याणक में नहीं आते, मात्र तीर्थंकरदेव के दीक्षा कल्याणक प्रसंग पर वैराग्य की अनुमोदना करने आते हैं, आत्मज्ञानी को ही सच्चा वैराग्य होता है, जो आत्मा को बलवान बनाने में कारण है।

(६) अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म भावना, यह बारह भावनाएँ अध्यात्म की जनेता हैं और प्रभुजी उन भावनाओं में झूल रहे थे।

(७) भव-तन-भोग अनित्य विचारा, इम मन धार तपे तप धारा;
सुर शिविका धर कानन धाये, धनधन देव अहो धन जाये।

(८) धन्य प्रभो! निजस्वरूप में लीन हो जाने के लिये आप मुनि होकर मौन धारण करेंगे, केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् दिव्यध्वनि के द्वारा मोक्षमार्ग प्रकाशित करेंगे। धन्य है आपका अवतार!

वैराग्यभरे वातावरण में इन्द्रों ने आकर प्रभु की दीक्षा का उत्सव मनाया, पालकी में आरूढ़ होकर भगवान ने वन की ओर प्रस्थान किया। दीक्षा कल्याणक की विशाल भव्य रथयात्रा निकली थी। दृश्य देखकर सब आनंदित थे। दीक्षा कल्याणक की विधि भावनगर के विशाल उपवन वल्लभभाई पटेल बाग में विशाल वटवृक्ष की छाया में हुई। यहाँ उपशांत वातावरण में आत्मध्यान में लीन मुनिराज चार ज्ञानसहित शोभित थे। पश्चात् दीक्षा प्रसंगोचित प्रवचन में श्री कानजीस्वामी ने मुनिदशा का स्वरूप और मुनिदशा की परम महिमा समझाकर उसकी अपूर्व भावना भायी थी। आज का दीक्षा कल्याणक का वातावरण बहुत वैराग्यमय था। दोपहर को विधि-मंडप के उपशांत वातावरण में वेदी पर विराजमान दस जिनबिंबों पर अंकन्यास विधि स्वामीजी के हस्त से हुई। अमरेली शहर तथा गढडा शहर में जिनमंदिरों की आवश्यकता होने से मंदिर बननेवाले हैं। वहाँ की जिनप्रतिमाएँ भी प्रतिष्ठा में सम्मिलित थीं। नूतन जिनमंदिर में वेदी-कलश-ध्वजा-दंड आदि शुद्धि की विधि हुई। रात्रि को भजन-भक्ति का कार्यक्रम था।

वैशाख सुदी १ को सवेरे प्रवचन के बाद श्री ऋषभ मुनिराज के आहारदान का महान प्रसंग था। असंख्य बरसों के पश्चात् वर्तमान चौबीसी में सर्व प्रथम आहारदान का अवसर श्रेयांस राजा को प्राप्त हुआ। इक्षुरस का आहारदान और उसके अक्षय फल के कारण यह दिन

अक्षयतृतीया के नाम से प्रसिद्ध है। आज हजारों भक्तगण उस आहारदान की अनुमोदना कर रहे थे। दोपहर को केवलज्ञान कल्याणक मनाया गया। इंद्रों ने समवसरण की भव्य रचना की। केवलज्ञान की पूजा हुई रात्रि को अजमेर भजनमंडली तथा कविराज दुला काग के भजनों का कार्यक्रम था।

* वैशाख शुक्ला दोज *

आज हमारे परमोपकारी पूज्य श्री कहानगुरु की ८१वीं जन्मजयन्ती थी। सवेरे स्वामीजी ने अविनाशी आतमराम की महिमा बहुमान सहित याद की। मंगल प्रभातफेरी जिनमंदिरर से निकलकर आदिनाथनगर में आयी, हाथी ने माला अर्पण करके स्वागत किया। मंडप के सामने ८१ दीपकों का महा मनोहर स्तंभ जगमग हो रहा था, भक्तों की बेसुमार भीड़ एवं जय-जयकार के बीच स्वामीजी सर्वप्रथम जिनेन्द्र भगवंतों को नमस्कार कर ध्यानमग्न हुए, पश्चात् आनंदपूर्वक श्री जिनदेव का महान पूजन हुआ। विशाल सभा में स्वामीजी द्वारा मंगल-प्रवचन के बाद श्री हिम्मतलालभाई तथा माननीय प्रमुख श्री नवनीतभाई सी. जवेरी आदि अग्रणीजनों ने समाज की ओर से स्वामीजी को श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं। अभिनंदन में शुभेच्छापूर्वक सैकड़ों तार आये थे। दोपहर में भावनगर के महाराजा श्री वीरभद्रसिंहजी भी प्रवचन में धर्मजिज्ञासावश आये थे। सारा प्रवचन प्रेमपूर्वक सुनकर प्रसन्नता व्यक्त की थी। शहर की जनता भी हजारों की संख्या में बड़ी रुचि से प्रवचन तथा उत्सव में लाभ ले रही थी। भावनगर का उल्लास भरा वातावरण बम्बई-अहमदाबाद के उत्सवों के समान चिरस्मरणीय रहेगा। भावनगर मुमुक्षु मंडल ने उत्सव की सफलता के लिये अथक श्रम किया; अतः मुमुक्षु मंडल तथा भावनगर के समस्त जैनसमाज एवं जनता को भी धन्यवाद!

वैशाख शुक्ला तीज के सवेरे निर्वाणकल्याणक मनाया गया। पंचकल्याणक विधि संपन्न हुई। जिनेन्द्र-बिंबों को गाजे-बाजे के साथ जिनमंदिर में विराजमान किया गया। भक्तों के हृदय आनंद से नाच रहे थे, हजारों संख्या में चारों ओर भीड़ लगी थी, श्री कानजीस्वामी ने जिनेन्द्र भगवंतों का पूजन किया। वेदी में विराजमान मूलनायक भगवान श्री सीमंधरनाथ हैं, जो वर्तमान पूर्व विदेहक्षेत्र में जीवंत स्वामी हैं। उनकी स्थापना हमारे माननीय श्री नवनीतभाई सी. जवेरी (अध्यक्ष श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़) के हस्त से हुई। स्वामीजी अत्यंत भक्तिभाव सहित जिनबिंबों की स्थापना करा रहे थे। सीमंधर प्रभु के आसपास वेदी में

श्री आदिनाथ भगवान तथा श्री महावीर भगवान तथा ऊपर की वेदी में श्री शीतलनाथ, वासुपूज्य भगवंत विराजमान हैं। पश्चात् जिनमंदिर के शिखर पर कलश और ध्वजारोहण विधि जयनादों सहित संपन्न हुई।

(यह जिनमंदिर भावनगर में गाँधी स्मृति के सामने जूनी माणेकवाडी में है।)

प्रतिष्ठा-विधि सागर निवासी पंडित श्री मुन्नालालजी समगोरया ने करायी थी। पंडित परमेष्ठीदासजी ललितपुर तथा अन्य विद्वान भी पधारे थे। अजमेर भजनमंडली का कार्यक्रम अच्छी तरह हुआ। बाहर से करीब पाँच हजार मेहमान आये थे, सभा में करीब ७-८ हजार श्रोता एकत्र होते थे।

वैशाख सुदी ४ तारीख ९-५-७० के सवेरे जिनमंदिर में दर्शन और स्तवन करके स्वामीजी सोनगढ़ पधारे, जहाँ उनका हर्षोल्लासपूर्वक भव्य स्वागत हुआ।

तारीख १०-५-७० को अट्ठावन मकानों की नवनिर्मित कहान नगर हाउसिंग सोसायटी का उद्घाटन एवं जैन विद्यार्थी शिक्षण-शिविर का प्रारंभ हुआ।

आचार्य कहते हैं कि पुण्यफलरूप चिन्तामणि आदि की महिमा हमें नहीं; हमें तो वह दाता ही उत्तम लगता है कि जो धर्म की आराधना सहित दान करता है... अपनी शक्ति होते हुए भी धर्म कार्य रुके, ऐसा धर्मी जीव नहीं देख सकता।

—: विदिशा में जैनधर्म शिक्षण शिविर :—

दिनांक २ जून से २१ जून तक श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड जयपुर द्वारा संचालित प्रशिक्षण शिविर इस वर्ष विदिशा में हो रहा है। इस शिविर में धर्माध्यापकों, धर्माध्यापिकाओं अथवा धर्माध्यापन के अभिलाषी भाई-बहनों को प्रशिक्षण दिया जायेगा। अत: सभी मुमुक्षु मंडलों के प्रधान तथा समाज के अध्यक्ष महानुभावों से निवेदन है कि वे अपने यहाँ के धर्माध्यापक भाई-बहनों को इस मंगलमय प्रसंग पर अवश्य भेजें। बोर्ड की ओर से सीमित व्यक्ति रखने का प्रबंध है, केवल ५० अध्यापक-बंधु ही नये प्रवेश प्राप्त कर सकेंगे। ५० अध्यापक गत वर्ष के रहेंगे ही, इसप्रकार १०० अध्यापक प्राशिक्षार्थी रहेंगे, अतएव अपना स्थान शीघ्र सुरक्षित कराने की कृपा करें। इस मंगलमय प्रसंग पर अध्यात्म-प्रवक्ता श्रीमान् पंडित खेमचंद जेठालाल सेठ तथा श्रीमान् पंडित बाबूभाई चुनीलाल मेहता के अपूर्व प्रवचनों का लाभ प्राप्त होगा।

दिनांक २१ जून ७० को दीक्षांत समारोह तथा विद्वानों के सम्मान का विशेष आयोजन होगा, जिसके मुख्य-अतिथि श्रीमान् सेठ नवनीतभाई चुनीलाल जवेरी बम्बई होंगे, तथा श्रीमान् सेठ पूरनचंदजी गोदिका जयपुर, श्रीमान् सेठ महेन्द्रकुमारजी सेठी बम्बई, श्रीमान् नेमीचंदजी पाटनी आगरा, श्रीमान् सेठ भगवानदासजी सागर आदि अनेक गणमान्य व्यक्ति पधारेंगे।

जिनके पते हमें उपलब्ध हो सके हैं, सबको पत्र दिये गये हैं; जिनके पास न पहुँच सके हों, वे कृपया इस विज्ञप्ति को ही आमंत्रण समझें और हमारे इस लघु प्रयास में सहयोग देकर अनुग्रहीत करें।

संयोजक:—
रतनचंद शास्त्री, ज्ञानचंद जैन
झांईपोर, विदिशा (म.प्र.)

धार्मिक समाचार

शाहदरा (दिल्ली) ११-५-७० सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी का ८१वीं जन्ममहोत्सव दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के द्वारा मनाया गया। जिनेन्द्र पूजन, प्रवचन, श्रद्धांजली कार्यक्रमानुसार हुआ। हमारे अध्यक्ष श्री लक्ष्मीचंदजी तथा पंडित प्रकाशचंदजी हितैषी आदि ने पूज्य स्वामीजी के द्वारा जो वीतरागमयी धर्म का डंका बज रहा है, उस पर प्रकाश डालते हुए

जैन समाज की भारी भीड़ में अपने उद्‌गार प्रगट किया, सुनकर सभी ने स्वामीजी का बहुत आभार माना।

शाहदरा जैन समाज के अध्यक्षजी ने श्रद्धांजली पश्चात् कहा कि हम श्री कानजीस्वामी के प्रति पूर्णरूप से विचारकर नहीं सोचते, वरना हमारी भूल या भ्रांति निकल जावे और उनके द्वारा जो आज जिन-धर्म का प्रचार सरल शैली में हो रहा है, वह एक महान कार्य है। यदि हम उनको समझ गये तो यही हमारी उनके चरण-कमलों में सच्ची एवं भावपूर्ण श्रद्धांजली होगी।

—श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल शाहदरा

देहली—दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, २६ डिप्टीगंज, सदर बाजार के तत्त्वावधान में श्री कानजीस्वामी का ८१वाँ जन्म-महोत्सव बड़े विशालरूप से मनाया गया, समाज के प्रतिष्ठित महानुभावों ने श्रद्धांजली अर्पित की। प्रभातफेरी, जिनेन्द्र पूजन-भक्ति श्री ज्ञानचंदजी मंत्री श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल दिल्ली द्वारा लिखित सनत्कुमार चक्री-नाटक दोनों दिन प्रस्तुत किया गया। समाज ने बड़ी प्रशंसा की। स्वामीजी के द्वारा दिगम्बर जैनधर्म एवं तत्त्वज्ञान का जो प्रचार हो रहा है, उसके सामने समस्त समाज नतमस्तक है।

श्री दिगम्बर जैन मंडल (रजि.) उपमंत्री

सहारनपुर—स्वामीजी की जयंती के एक सुंदर आयोजन में सभी मुमुक्षुगण ने सामूहिक श्री जिनेन्द्र पूजन की। श्री बेनीप्रसादजी की अध्यक्षता में एक सभा हुई; अनेक वक्ताओं ने स्वामीजी के जीवन पर प्रकाश डाला, उनके जीवन की पवित्र गंगा में अनेक पात्र जीवों की अनेक शंकाएँ प्रक्षालित हुई, जिससे जैनधर्म की प्रभावना हो रही है। एक अग्रणी धर्मात्मा बहिन ने स्वामीजी द्वारा प्रकाशित द्रव्यदृष्टि की अनुभूत महत्ता पर प्रकाश डाला जिसकी श्रोताओं ने अति प्रशंसा की। लाला जिनेश्वरदासजी आदि ने सर्वज्ञ कथित द्रव्य-गुण-पर्याय की सूक्ष्मता पर विचार व्यक्त किये, जिनको स्वामीजी के सानिध्य में सीखा है। सभापतिजी सोनगढ़ जाकर स्वामीजी से मार्मिक तत्त्वचर्चा सुन चुके हैं—भावभीनी श्रद्धांजली अर्पित की।

—मंत्री

(एक अग्रणी आत्मार्थी श्रीमती ने द्रव्यदृष्टि की महत्ता सूचक स्वानुभूति प्रेरक हार्दिक उद्‌गार ४ पेज में लिखकर भेजे हैं। धन्यवाद!)

उज्जैन—जन्मजयंती का ८१वाँ उत्सव समारोह पंडित सत्यधरकुमारजी सेठी की

अध्यक्षता में सीमंधर दिगम्बर जैन मंदिर के प्रांगण में मनाया गया। अग्रणी वक्ताओं द्वारा श्रद्धांजली समर्पण, पश्चात् अध्यक्षपद से श्री सेठीजी ने कहा कि आध्यात्मिक संदेश को देते हुए संत श्री कानजीस्वामी ही विश्व को शाश्वत् शांति का मार्ग बतला रहे हैं। हम चाहते हैं कि यह आध्यात्मिक संत वर्षों तक इस भारतभूमि पर सद्धर्म का प्रचार व प्रसार करते हुए चिरंजीव रहें।

—मंत्री एवं अध्यक्ष

(बहुत गाँवों से इस विषय में श्रद्धांजली-पत्र आये हैं।.....आभार!)

सोनगढ़ में—वैशाख शुक्ला ४ तारीख ९-५-७० को सोनगढ़ में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का पुनरागमन हुआ और यहाँ के वातावरण में पुनः अध्यात्मरस की धारा बहने लगी। करीब तीन महीने से सुषुप्त नगर में मानों चेतना का संचार हुआ। सवेरे समयसार गाथा २७२ पर तथा दोपहर को पंचास्तिकाय गाथा ६२ पर पूज्य स्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन प्रारंभ हुए। तारीख १०-५-७० से तारीख २९-५-७० बीस दिन तक धार्मिक शिक्षण शिविर चला, उसमें बाहर से करीब ४०० विद्यार्थी आये थे, जिन्हें सवेरे और दोपहर को प्रवचन के बाद १-१ घंटे तक धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। माननीय श्री रामजीभाई माणेकचंद दोशी, श्री पंडित खीमंचद जेठालाल सेठ, श्री चिमनलाल ताराचंद कामदार, श्री ब्रह्मचारी झमकलाल, ब्रह्मचारी गुलाबचंदजी, श्री ब्रह्मचारी बृजलालजी आदि विद्वानों ने शिक्षणकार्य किया। तारीख २९-५-७० को शिविर की पूर्णाहुति हुई जिसमें विद्वानों के संक्षिप्त भाषण हुए और सबने पूज्य स्वामीजी का खूब खूब उपकार माना। विद्यार्थियों को पारितोषिक रूप में पुस्तकें बांटी गईं।

—ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

श्रुतपंचमी

वीतरागी ज्ञान की अखंडधारा का महान पर्व जिसके साथ गिरनारगिरि और अंकलेश्वर की प्राचीन यशगाथा प्रसिद्ध है, श्री धरसेन, पुष्पदंत, भूतबली, वीरसेनस्वामी जैसे श्रुतधर वीतरागी संतों द्वारा जो ज्ञान मुमुक्षु को भेंट दिया गया है, उस ज्ञान की अच्छिन्नधारा का यह महान पर्व ज्येष्ठ सुदी पंचमी है। जिसप्रकार समयसारादि महान वीतरागी अध्यात्म शास्त्रों के स्वाध्याय और प्रचार की आवश्यकता है, उसीप्रकार षट्खंडागम-गोम्मटसार आदि भी वीतरागी सिद्धांतशास्त्र हैं, उनकी स्वाध्याय और प्रचार जरूरी है। श्रुत की-चारों अनुयोग की सुंदर ढंग से स्वाध्याय के द्वारा श्रुतपंचमी पर्व मनाना चाहिये। जिनेन्द्रों की पूजा के समान ही वीतरागी श्रुत की पूजा-स्वाध्याय करना मुमुक्षु जीवों का कर्तव्य है।

नये प्रकाशन

मोक्षमार्गप्रकाशक (आधुनिक भाषा में दूसरी आवृत्ति)

आचार्यकल्प पंडितप्रवर श्री टोडरमलजी कृत यह उत्तम रचना है, मूल स्वहस्तलिखित प्रति के ऊपर से अक्षरश: अनुवाद कराके बड़े भारी परिश्रम पूर्वक और अपूर्व उत्साह के साथ जिनवाणी की भक्ति द्वारा यह ग्रंथ तैयार किया गया है। ग्रंथ के अंत में पंडितजी कृत रहस्यपूर्ण चिट्ठी तथा कविवर पंडित श्री बनारसीदासजी कृत परमार्थ वचनिका, निमित्त-उपादान चिट्ठी, यह तीनों भी मूल प्रतियाँ प्राप्त करके प्रकाशन में सम्मिलित कर लिये गये हैं। प्रथमावृत्ति ११००० थी जो तुरंत बिक गई थी; ७००० छपी है। पहले ही छह हजार के ग्राहक हो चुके हैं। पृष्ठ संख्या ४०८ बड़ी साइज में हैं। उत्तम ज्ञान प्रचारार्थ मूल्य २-५० रखा गया है। पोस्टेजादि अलग। जिनके आर्डर आ चुके हैं, आनेवाले हैं, सबसे प्रार्थना है कि अपना पूरा पता रेलवे स्टेशन, सहित स्पष्ट लिखने का कष्ट करें।

विशेष:—मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अध्याय की १००० प्रतियाँ अलग छपी हैं, जिसका मूल्य मात्र पचास पैसे है।

छहढाला (सचित्र पाँचवीं आवृत्ति)

यह पुस्तक जैनसमाज में पाठ्य-पुस्तकरूप में अति प्रसिद्ध होने से सर्वत्र छपती है, सोनगढ़ से इस पुस्तक की छह आवृत्तियाँ सादा और पाँच आवृत्तियाँ सचित्र प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रथम आवृत्ति ११५०० छपी थी; मराठी भाषा में ५००० छप चुकी हैं जो जिज्ञासुओं में पढ़ने की रुचि का माप है। इसमें आत्महित का उपाय गागर में सागर की भाँति भरा है, पूर्वाचार्यों के सर्व उपदेश का सार है, जैन तत्त्वज्ञान सुगम शैली से भरा है, सभी के लिये बारम्बार स्वाध्याय योग्य है। पृष्ठ २०८, मूल्य १-०, पोस्टेज अलग।

प्रेस में:— श्रावकधर्म प्रकाश (द्वितीयावृत्ति)
नाटक समयसार (पंडित बनारसीदासजी रचित)
समयसार प्रवचन (जीव-अजीव अधिकार पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)
जैन बालपोथी (दूसरा भाग)

पता—
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	" " " भाग-२	१.००
	" " " भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
१७	अष्ट-प्रवचन	१.५०
१८	मोक्षमार्गप्रकाशक (ढूंढारी भाषा में) (सस्ती ग्रंथमाला दिल्ली)	२.२५
१९	अपूर्व अवसर-प्रवचन	१.५०
२०	पण्डित टोडरमलजी स्मारिका	१.००
२१	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२४	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
२६	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-३	०.६५
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	३.२५
२७	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२८	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
२९	मंगल तीर्थयात्रा (गुजराती-सचित्र)	६.००

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :

मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)